ISSN 2582-0885

# स्रवंति

# స్రవంతి

मासिक पत्रिका

మాసపత్రిక

अगस्त : 2023

మూల్యం : ₹ 15/-

ఆగస్టు : 2023

వెల : ₹ 15/-

## दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा-आंध्र प्रदेश तथा तेलंगाणा

(Provincial Branch of Dakshina Bharat Hindi Prachar Sabha, Madras)

(Declared by Parliament as an Institution of National Importance by Act 14 of 1964)

खैरताबाद, हैदराबाद - 500 004, फोन - 040-23316865

Email : dbhpsandhra@yahoo.co.in Website : www.dbhpsapts.com

# दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद में

## केंद्र सभा के कार्यकारिणी समिति की बैठक

**29 जुलाई, 2023**

# स्रवंति

## मासिक पत्रिका

अगस्त - 2023

ISSN : 2582-0885

वर्ष 68 | केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के अनुदान से प्रकाशित | अंक 5

*संपादक*

**जी. सेल्वराजन**

*सचिव (प्रभारी)*

**ए. जानकी**

*सह संपादक*

**डॉ. जी. नीरजा**

neerajagurramkonda@gmail.com

**मूल्य : ₹ 15/-**

**वार्षिक शुल्क : ₹ 150/-**

dbhpsandhra@yahoo.co.in

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा
आंध्र प्रदेश तथा तेलंगाणा
(Declared by Parliament as an Institution of National Importance by Act 14 of 1964)
खैरताबाद, हैदराबाद - 500 004,
फोन : 040-23316865
website : dbhpsapts.com

रांगेय राघव विशेषांक - 5

संपादकीय

▲ स्मरण एक इतिहासवेत्ता साहित्यकार का — 4

धरोहर

▲ हे मातृभूमि (कविता) — मैथिलीशरण गुप्त — 11

▲ हमारा देश (कविता) — अज्ञेय — 12

▲ बिल और दाना (लघुकथा) — रांगेय राघव — 20

स्मरण में है आज जीवन : 15

▲ रमानाथ सहाय : आदमीयों से भरी है... — दिलीप सिंह — 6

श्रद्धांजलि

▲ हल्का होने का अहसास : मिलन कुंदेरा — गोपाल शर्मा — 13

आलेख

▲ रांगेय राघव की कहानियों की प्रासंगिकता... — सुपर्णा मुखर्जी — 27

▲ रांगेय राघव की कहानियों में जनजीवन — शकीला बेगम मुस्ताफा — 30

▲ अकाल के संत्रास से पीड़ित मनुष्य... — बी. संतोषी कुमारी — 33

▲ मार्क्सवादी जीवन-दृष्टि में आस्था..... — शेख सैबाशिरीन — 37

तेलुगु खंड

▲ రక్షా బంధన్ — రాధాకృష్ణ మిరియాల — 42

गतिविधियाँ — 45

'स्रवंति' में प्रकाशित रचनाकारों के विचार स्वयं उनके हैं। अतः संपादक का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

संपादकीय...

## स्मरण एक इतिहासवेत्ता साहित्यकार का

रांगेय राघव की चिंतन प्रक्रिया गतिशील है। वे साहित्यकार के साथ-साथ इतिहासवेत्ता भी हैं। उनके साहित्य में भारतीय ऐतिहासिक परिदृश्य, भारतीय चिंतन तथा दर्शन को भलीभाँति देखा जा सकता है। रांगेय राघव का नाम लेते ही हम प्रायः 'कब तक पुकारूँ', 'गदल', 'सीधा-सादा रास्ता', 'तूफ़ानों के बीच', 'लोई का ताना', 'भारती का सपूत', 'यशोधरा जीत गई' आदि रचनाओं की चर्चा तक ही सीमित हो जाते हैं। लेकिन उनका साहित्य विपुल है। उनके साहित्य का कैनवास भी विस्तृत है। एक ओर वे 'भारतीय चिंतन' को पाठकों के समक्ष रखते हैं तो दूसरी ओर 'महाकाव्य : विवेचन' के माध्यम से प्राचीन कविता का विश्लेषण करके यक्ष और युधिष्ठिर के संवादों की सहायता से धर्म की मानवतावादी दृष्टि को उजागर करते हैं। युधिष्ठिर के माध्यम से वे यह प्रतिपादित करते हैं कि मनुष्य का कोई निश्चित धर्म नहीं होता। वह बदलता रहता है। मनुष्य को तो "महापुरुषों के रास्तों को देखकर अपना रास्ता बनाना चाहिए, क्योंकि जो आदमी किताब के लिखे को आँख मूँदकर मानकर चलता है, वह समय की गति को नहीं समझता। हम न इस संसार का आदि जानते हैं, न अंत जानते हैं। हम तो बीच रास्ते पर हैं। यहाँ सिवाय इसके कि पीछे मुड़कर देखने पर हमें पहले चले हुओं के पाँवों के निशान दिखाई देते हैं, हमें और मदद ही क्या है?" (रांगेय राघव, महाकाव्य : विवेचन, पृ. 58)। वे जहाँ प्राचीन कविता की बात करते हैं वहीं 'आधुनिक हिंदी कविता में प्रेम और शृंगार' का खुलासा भी करते हैं और कहते हैं कि गत्यात्मकता मूल नियम है। साहित्य में जो आनंद प्रदान करता है "वह उसकी मानवीयता है, जो हमारे 'भावों' को रमाती है, जगाती है, और वह भव्य आनंद ही 'रस' है।' (रांगेय राघव, आधुनिक हिंदी कविता - प्रेम और शृंगार, भूमिका)।

रांगेय राघव की कहानियों में मिथकों को रेखांकित किया जा सकता है। सामान्य रूप से मिथक व पौराणिक घटनाओं और कहानियों को धर्म, दर्शन और अध्यात्म से जोड़कर देखा जाता है। उनमें वस्तुतः कल्पना का समावेश होता है। साहित्य सृजन में मिथकों के प्रयोग की एक शृंखला-सी बनी हुई है। भारतीय मिथकों में जीवन और संस्कृति निहित है। भारतीय जनमानस में मिथकीय संकल्पनाएँ इस तरह गुँथी हुई हैं कि उन्हें जीवन से अलग करके देखना असंभव है। रांगेय राघव ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से इन मिथकों को बहुत ही सरल भाषा प्रयोग के द्वारा पाठकों के समक्ष रखा है। जहाँ उन्होंने रुरु और प्रमद्वरा, इंद्राणी और नहुष, दीर्घतमा और प्रद्वेषी, देवयानी और ययाति, नल-दमयन्ती, गंगा, सत्यवती, उलूपी, माधवी, शकुंतला, शिखंडी आदि के माध्यम से पौराणिक प्रेम कहानियों को उजागर किया है, वहीं इंद्र और प्रह्लाद की कथा, गिद्ध और गीदड़, हँस और कौए की कथा, मुनि और कुत्ते की कथा, मंदपाल ऋषि, राजा उशीनर, राजा ब्रह्मदत्त और पूजनी चिड़िया आदि कहानियों के माध्यम से जीवन मूल्यों को उजागर किया है। 'रुरु और प्रमद्वरा' शीर्षक कहानी के माध्यम से रांगेय राघव ने यह स्पष्ट किया है कि 'संसार में सबसे बड़ा धर्म अहिंसा है। वेद-वेदांग का पारंगत होना, सत्य बोलना, क्षमा करने की भावना रखना तथा सरल होना ही ब्राह्मण के लिए श्रेष्ठ कार्य नियत है।' (रांगेय राघव, प्राचीन प्रेम और नीति की कहानियाँ, पृ.13)। यह सिर्फ ब्राह्मण के लिए ही नहीं अपितु संसार के समस्त प्राणियों के लिए है।

रांगेय राघव सिर्फ भारतीय मिथकों के माध्यम से ही बात नहीं करते, अपितु पाश्चात्य मिथकों का भी भरपूर प्रयोग करते हैं। जहाँ भारत के परिप्रेक्ष्य में सृष्टि का आदि पुरुष मनु को माना जाता है वहीं बेबीलोनिया में आदि पुरुष के रूप में अप्सु को माना जाता है। रांगेय राघव ने अपनी कहानी 'आदि पुरुष अप्सु' में रोचक ढंग से देवी-देवताओं तथा सृष्टि निर्माण की कथा को स्पष्ट किया है। (रांगेय राघव, संसार की प्राचीन कहानियाँ, पृ. 94)।

ऐसे विलक्षण साहित्यकार के साहित्यिक अवदान को समेटना चुनौती का काम है। 'स्रवंति' ने, एक लघुकाय पत्रिका होते हुए भी, रांगेय राघव की जनमशती के अवसर पर विशेषांक निकालने का साहस किया है। लेखकों ने पूरा सहयोग दिया और पाठकवर्ग ने भी हमारे इस प्रयास को सराहा। 'रांगेय राघव विशेषांक-5' आपके हाथ में सौंपते हुए हम हर्ष का अनुभव कर रहे हैं। इस अंक में रांगेय राघव की कहानियों पर केंद्रित दो आलेख हैं। डॉ. शकीला बेगम मुस्तफा ने जहाँ रांगेय राघव की कहानियों में निहित जनजीवन पर प्रकाश डाला है, वहीं डॉ. सुपर्णा मुखर्जी ने वर्ष 2023 में उनकी कहानियों की प्रासंगिकता को रेखांकित किया है। डॉ. बी. संतोषी कुमारी ने उनके रिपोर्ताज 'तूफ़ानों के बीच' में संकलित अदम्य जीवन पर चर्चा की है तो डॉ. शेख सैबाशिरीन ने उनके उपन्यास 'सीधा-सादा रास्ता' का विश्लेषण मार्क्सवादी दृष्टि से किया है। 'धरोहर' स्तंभ के अंतर्गत रांगेय राघव की लघुकथा 'बिल और दाना' के साथ-साथ मैथिलीशरण गुप्त की कविता 'हे मातृभूमि' प्रस्तुत है।

इस अंक में प्रो. दिलीप सिंह का 'स्मरण में है आज जीवन' रमानाथ सहाय पर केंद्रित है। 'इम्मोरटेलिटी', 'द जोक', 'द अनबियरेबल लाइटनेस ऑफ बीइंग' के लेखक मिलान कुंदेरा (1 अप्रैल, 1929) का निधन 11 जुलाई, 2023 को हुआ। उनके जीवन और साहित्य पर केंद्रित प्रो. गोपाल शर्मा का शोधपूर्ण आलेख भी इस अंक में सम्मिलित है।

पिछले अंक में हमने यह घोषणा की थी कि इस शृंखला का यह अंतिम पड़ाव होगा, परंतु कुछ विशेष लेख छूट रहे हैं अतः सितंबर का अंक 'रांगेय राघव विशेषांक-6' होगा।

रांगेय राघव की इन पंक्तियों के साथ स्वतंत्रता दिवस की शुभकामनाएँ...

देश,  
संगठन कर,  
जातियों की लहर मिलकर  
तू भयानक सिंधु  
राष्ट्र रक्षा के लिए जो धीर  
फिर उठा ले आज  
संस्कृति की पुरानी लाज से  
भीगी हुई तलवार

(सह संपादक)

स्मरण में है
आज जीवन:15

# रमानाथ सहाय
# आदमीयों से भरी है, ये मेरी दुनिया मगर..

- दिलीप सिंह

निदेशक, लुप्तप्राय भाषा केंद्र, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक - 484886 (मध्यप्रदेश)

प्रो. रमानाथ सहाय की स्मृतियाँ बहुत खुशगवार हैं। सुकून देने वाली। वे आदमी ही ऐसे थे। उन्होंने एक चींटी भी न मारी होगी। सबके बन कर रहना उनकी फितरत थी। उनका मन निर्विकार था तो उनके साथ बैठ कर, उनसे बात करके बड़ी शांति मिलती थी। वातावरण सुहाना हो जाता था। फूल खिलने लगते थे। आदमीयत की सुगंधि फैलने लगती थी। उनके हर 'जेस्चर', हर बर्ताव में स्वाभाविकता समाई रहती थी। अपने जीवन में मैंने ऐसा एक ही आदमी देखा, सहाय साहब को। उनकी सौम्यता विलक्षण थी, उनकी अपनी थी। अपने तरह की थी।

वे सामान्य सा कमीज-पैंट पहनते थे। कमीज बाहर निकली हुई, कमीज क्या, फुलस्लीव बुशशर्ट। जबसे मैंने उन्हें जाना लगभग वृद्ध ही थे। सामान्य कद-काठी के। बाल सफेद और कम। खूब जल्दी-जल्दी बोलते थे। लटपटाते हुए। पर पढ़ाते समय इस जल्दबाजी और लटपटाहट को काबू करने की कला भी वे बखूबी जानते थे। उनके चलने-फिरने में एक तरह का ठहराव था। उन्हें देख कर ही लग जाता था कि यह आदमी गहरा है। वे बहुत गहरे वैय्याकरण थे हिंदी के। हिंदी की भाषिक इकाइयों की सूक्ष्मताओं के भीतर पैठने का रहस्य उनके भीतर बैठा वैय्याकरण अच्छी तरह जानता था। डॉ. सहाय व्याकरण की गहन गुत्थियों को समझने और समझाने में खोए रहते थे। हिंदी व्याकरण को वे बहुत महीन काटते थे। उनसे पहली मुलाकात के पहले मैंने उनका एक लेख पढ़ा था- **हिंदी क्रिया धातुओं की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि**। तभी यह लग गया था कि वे आधुनिक भाषाविज्ञान, ऐतिहासिक भाषाविज्ञान और हिंदी व्याकरण के एक समर्थ व्याकरण-चिंतक हैं। काश, डॉ. सहाय मुझे एक अध्यापक के रूप में मिल पाते।

मेरी यह अरदास जल्द ही सुन ली गई। 1974 के ग्रीष्मकालीन भाषाविज्ञान शिविर में वे हमारे अध्यापक बने - चंडीगढ़ में। लगभग एक महीने। मुझे भली-भाँति याद है कि उन्होंने हिंदी के क्रिया-रूपों पर कई कक्षाएँ ली थीं। अन्य भाषा शिक्षण में 'टैग्मेमिक्स' की उपयोगिता पर भी उनके कुछ लेक्चर हुए और कई व्याख्यान उन्होंने हिंदी में काल, वृत्ति और पक्ष पर दिए थे। कुशल अध्यापक थे डॉ. सहाय। हिंदी की व्याकरणिक व्यवस्था को क्रम देते हुए पेश करते थे। ब्लैक बोर्ड का भरपूर उपयोग करते थे। 'व्याकरण' के नाम से घबड़ाने वाले मुझ जैसे प्रतिभागियों को भी जल्द ही उन्होंने अपनी मुट्ठी में कर लिया था। उनमें सादगी और विद्वत्ता का ऐसा अद्भुत मेल था कि कोई भी उनके बस में हो जाने को अपना भाग्य मानता था। कक्षा में वे हँसते-मुस्कुराते और बतियाते हुए अपनी बात कहते थे। हमें अपने नज़दीक करके।

मैं भी ऐसे ही भाग्यशालियों में से एक था। दो-चार कक्षाओं के बाद ही वे मेरी ओर खास तवज्जो देने लगे। जब श्रीवास्तव जी (रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव) चंडीगढ़ आए और सहाय साहब को हमारे संबंधों का पता चला तो उन्होंने ज़ोर-ज़ोर से मेरी पीठ थपथपा दी। मेरे प्रति उनका स्नेह श्रीवास्तव जी की वजह से नहीं - मेरी बहन बीना श्रीवास्तव के कारण अधिक गाढ़ा हुआ था। वे बीना जी (मेरी जिज्जी) से बहुत प्रभावित थे, कहते थे कि - रवींद्र आज जो भी हैं, बीना की तपस्या से ही हैं। उनका कितना मान-जान था यह इसी बात से पता चलता है कि वे श्रीवास्तव जी को रवींद्र, एस.के. वर्मा को शिवेंद्र और पंडित जी को विद्यानिवास संबोधन देते थे।

एक बार वे पंडित जी के बंगले पर ही ठहरे हुए थे। तब पंडित जी संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति थे। मैं शाम को गया तो वे बातचीत में बोले - विद्यानिवास, कल की गोष्ठी में विषय-प्रवर्तन रवींद्र से करवा दो। यह सुनकर मैं चक्कर खाते-खाते रह गया। भला 'पंडित जी' को कोई ऐसे बुला सकता है? डॉ. सहाय इन सबमें वरिष्ठ थे। ये सभी मूर्धन्य भाषाविद् सहाय साहब की वैदुष्य वरिष्ठता का अतिशय आदर करते थे। चंडीगढ़ में उन्होंने ही मुझे 'समाज भाषाविज्ञान' में शोध करने का आदेश दिया था। मैं तब एम.फिल. कर रहा था- हैलिडे पर। बातचीत में वे मेरे रुझान को भाँप चुके थे। शाम को मैं उन्हें ढूँढ़ता हुआ पंडित जी के कमरे में गया तो सहसा वे बोल उठे विद्यानिवास, तुम दिलीप से समाज भाषाविज्ञान पर काम करवाओ। पंडित जी स्वीकृति में सिर हिला कर रह गए। आगे जब भी मैं उन्हें अपनी पीएच.डी. का श्रेय देता तो वे मेरा कंधा जोर से ठोंक देते थे।

चंडीगढ़ की एक याद बड़ी मजेदार है। वे रोज शाम को मेरे साथ थोड़ी दूर तक घूमने जाते थे। बोले, तुम रवींद्र और विद्यानिवास के साथ बैठ कर यहीं अपनी रूपरेखा बनवा लो। तैयारी अभी से शुरू कर दो। मुझे इस आदमी ने अचरज में डाल दिया था। इस भाषा-अध्येता के अंतर में कितना बड़ा इंसान बैठा हुआ है। यह तो कुछ नहीं था, एक तगड़ा झटका लगना अभी बाकी था। एक दिन तय हुआ कि शाम को सब डोसा खाने चलेंगे। गरिष्ठ पंजाबी खाने से ऊबा हुआ दस-पंद्रह लोगों का एक गुट टहलते हुए पास के ही एक रेस्त्रां में पहुँचा। डॉ. सहाय भी थे। श्रीवास्तव भी। भोलानाथ तिवारी भी। एम.जी. चतुर्वेदी भी। अन्य और कुछ प्रतिभागी भी। खाते-पीते साढ़े आठ बज गए थे। अचानक सहाय साहब ने घोषणा कर दी - मेरे साथ सिनेमा देखने कौन-कौन चलेगा? रेस्त्रां के बगल के थिएटर में 'हवस' फिल्म लगी थी। आधे लोग तो फिल्म के नाम से ही सकते में आ गए थे। शेष ने थकान का या और कोई बहाना बना दिया। मैं फिल्मों का रसिया था, राज़ी हो गया, पर सकते में मैं भी था कि डॉ. सहाय और फिल्म? हमने फिल्म देखी, रात 9 से 12 का शो। वे फिल्म को 'सिनेमा' ही कहते थे। बाद में श्रीवास्तव जी ने बताया कि सहाय जी हिंदी फिल्मों के बहुत शौकीन हैं, तीन-चार दिन पहले वे अकेले ही जाकर 'धर्मा' फिल्म देख आए हैं। सहाय साहब शिष्ट मज़ाक और व्यंग्य भी कर लेते थे। जिसे 'चुटकी लेना' कहते हैं। एक दिन सबके सामने कहने लगे कि रवींद्र, तुम शैलीवैज्ञानिक हो, 'धर्मा' फिल्म में एक कव्वाली है, उसका विश्लेषण जरूर करना। उनके यह कहने पर सबके साथ पंडित जी भी हँस पड़े। श्रीवास्तव जी को भी फिल्में पसंद थीं। वे भी एक दिन कालरा दंपत्ति के साथ जाकर 'धर्मा' देख आए। मुझे तो नहीं पता कि उन्होंने उस कव्वाली का शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण किया या नहीं। वह कव्वाली का मुकाबला था, कोठे पर। प्राण और बिंदु

पर फिल्माया गया था। यह कव्वाली बहुत मकबूल हुई थी। प्राण डाकू हैं, नवाब का वेष धर कर कोठे पर गए हैं। वेश्या बिंदु उन्हें पहचान लेती है। वह अपनी कव्वाली में कहती है - *राज़ की बात कह दूँ तो जाने महफिल में फिर क्या हो?* डाकू प्राण का जवाब आता है- *राज़ कहने का तुम पहले जरा अंजाम सोच लो, इशारों को अगर समझो राज़ को राज़ रहने दो।* इस लंबी कव्वाली में वाकई शैलीय विश्लेषण की भरपूर संभावना है।

एकदम निराभिमान व्यक्ति थे डॉ. सहाय। उनका मुस्कुरा-मुस्कुरा कर बोलना तो मुझे भूलता ही नहीं। फिर हम अगले साल (1975) एक महीने हैदराबाद में साथ रहे। वहाँ उन्होंने हमें हिंदी क्रिया धातुओं और हिंदी की काल व्यवस्था पर कई लेक्चर दिए थे। भाषा संप्रेषण एवं संप्रेषणपरक व्याकरण की संकल्पना उस समय नई-नई थी, तभी उन्होंने इनसे हमारा परिचय करा दिया था। हैदराबाद में ही खबर मिली थी कि देश में इमरजेंसी लगा दी गई है। सभी खिन्न और भयभीत थे। डॉ. साहब को पहली बार मैंने चिंतित देखा था। रोज 'डकन क्रॉनिकल' पढ़ते। उनकी चिंता यह भी थी कि अब हम लोग बड़े ग्रुप में घूमने-फिरने और सिनेमा देखने जा सकेंगे या नहीं। हैदराबाद में हम कई लोगों ने 'रजनीगंधा' फिल्म देखी थी। सहाय साहब को इस फिल्म के कवित्वमय गीत बहुत पसंद आए थे।

किसी को छोटा दिखाना, बहस करके रक्षात्मक बनाना, निरर्थक विवाद करना, क्रोध करना, चुगली खाना, निंदा करना... तो उन्हें आता ही नहीं था। एक प्रतिभागी थे बच्चा पांडेय। देवरिया या किसी ऐसी ही जगह पर हिंदी के अध्यापक थे। सीधे-सीधे कहिए तो वे परंपरावादी हिंदी अध्यापक थे। उन्हें ये नवीन शिक्षण-पद्धतियाँ समझ में ही नहीं आती थीं, बेमतलब बहस कर बैठते। इसी तरह की उनकी जिज्ञासाएँ सुन कर सहाय जी ने कक्षा के बाद बड़ी शांति से उनके कंधे पर हाथ रख के कहा था। पांडेय, तुम अपनी तरह से सोचते हो, सोचना चाहिए। नया ज्ञान तुम आसानी से ग्रहण कर सकते हो। कोई कठिनाई हो तो मेरे कमरे में आ जाया करो। समझ गए न, गुड। उस दिन के बाद हमें पांडेय जी के व्यवहार में अप्रत्याशित परिवर्तन दिखाई देने लगा। उनके कथन में निपट सत्यता होती थी, जो महसूस भी होती थी।

'संप्रेषणपरक व्याकरण' और भाषा की सामाजिक भूमिका उनके भीतर तभी से पक रहे थे। वे एक समर्थ वैय्याकरण थे। के.एम. भाषा संस्थान, आगरा में रह चुके थे। वहीं से केंद्रीय हिंदी संस्थान आए थे। हिंदी व्याकरण को उन्होंने अपना क्षेत्र बनाया था। इस रूप में ख्याति अर्जित की थी। वे हिंदी भाषा के वैविध्य को भी समझते थे। संस्कृत व्याकरण में विवेचित संप्रेषणपरक प्रविधियों को वे जानते थे। उस समय उन्होंने श्रीवास्तव के साथ मिल कर एक योजना बनाई थी - **हिंदी का सामाजिक संदर्भ** पुस्तक की। इसी विचार-मंथन का थोड़ा-सा प्रसाद उन्होंने हमें हैदराबाद में बाँटा था। यह पुस्तक 1976 में आई थी। किताब तैयार थी। संपादकीय लिखनी थी। वे और श्रीवास्तव संपादक थे। 'संपादकीय' के लिए वे घर आते थे। दोनों खूब बातचीत करते। तब वे दिल्ली केंद्र के प्रोफेसर प्रभारी थे। बोले 'रवींद्र, पूरी किताब दिलीप को दे दो, ये क्रम दे देगा। मुझसे बोले- तुम संपादकीय को साफ-साफ लिख डालो। कुछ दिन बाद मैं पूरी सामग्री लेकर गया तो मेरे भाग्य खुल गए। डॉ. सहाय ने मुझे बिन माँगे मोती दे दिए। भाषा का सामाजिक संदर्भ, उनके मस्तिष्क में बरसों घुमड़ता और परिपक्व होता रहा और

1987 में 'संस्थान' से ही उनकी एक पुस्तक आई थी- **संप्रेषणपरक व्याकरण : प्रकृति और स्वरूप**। यह पुस्तक लगातार मेरा मार्गदर्शन करती रही। हिंदी का सामाजिक संदर्भ की पूरी सामग्री उन्होंने अपनी मेज़ की ड्रॉर में रख ली। बोले- बहुत सधा हुआ लिखते हो। मैं लजा ही रहा था कि फिर बोले- शारदा (भसीन) प्रसूति छुट्टी पर जा रही हैं। तुम आ जाओ। मैं भावावेश में था, उन्हें लगा संशय में हूँ, कहा- रवींद्र से बात कर लो, कल ही से आ जाओ। मैं सकुचाते हुए बोला कि- डॉ. साहब मैं तो इस समय अपनी पीएच.डी. में जुटा हूँ। तुरंत अपनी चिर-परिचित मुस्कान के साथ बोले- वह काम रात में कर लेना। उनके स्नेह और आदेश को टाल पाना आसान नहीं था। मैं दूसरे दिन पहुँचा। कमरे में झाँका तो उन्होंने इशारे से भीतर बुला लिया। बोले, शाबाश जवान! मुझसे उन्होंने पहली मंजिल पर जाने के लिए कहा- तुम सर (मोहन लाल), बहुगुणा (ललित मोहन) और गोस्वामी (कृष्ण कुमार) के कमरे में बैठोगे। और चपरासी को मेरे साथ कर दिया। धीरे-धीरे ये तीनों मेरे परम आत्मीय बने। पहले दिन कोई काम नहीं था। बाकी लोग कक्षाएँ लेने आते-जाते रहे। मैं एक 'चैप्टर' ले गया था, बैठ कर उसे ही गोदता रहा। शाम को मिलने गया तो बोले- कल से तुम्हें एक बहुत जरूरी काम करना है। मैं रास्ते भर सोचता रहा कि वे मुझे क्या दायित्व सौंपेंगे। श्रीवास्तव जी को अपनी चिंता बताई तो कहने लगे- डॉ. सहाय दूर की सोचते हैं, 'प्लानर' हैं, आपको कोई खास काम ही देंगे।

1975 में 'शब्दकोश गोष्ठी' हुई थी। श्रीवास्तव, नामवर जी, एस.के. वर्मा, मसूद हुसैन खान, एम.जी. चतुर्वेदी और खुद सहाय साहब बोले थे। और भी कई विद्वानों ने शिरकत की थी। डॉ. साहब के कमरे में पहुँचा तो कहने लगे- तुम्हें **शब्द-संगोष्ठी** के कैसेट्स और टेप रिकॉर्डर भिजवा रहा हूँ। इन्हें सुन कर लिपिबद्ध करना है। पुस्तक छपनी है। तुम्हारी राइटिंग अच्छी है। खूब बढ़िया से करना। तुम्हारे बैठने की व्यवस्था ऊपर टेरेस में करवा दी है। फिर मुस्कुरा कर बोले- जाओ मियाँ, जम कर काम करो। ऊपर पहुँचा तो सब व्यवस्था चौकस थी। कागज, कलम, पेंसिलें, रबर, स्केल, पेपरवेट, सब कुछ था। दो टेबल जोड़कर बैठने की जगह बनाई गई थी। टेप रिकॉर्डर फिक्स कर दिया गया था। मैंने अपने शोध-सर्वेक्षण में टेप रिकॉर्डर का खूब इस्तेमाल किया था, एक तरह से कुशल था। काम शुरू कर दिया। बड़ा थकाने वाला काम था। कैसेट आगे-पीछे करते-करते उंगलियाँ भी बोल जाती थीं। पर 'इयरफोन' में जब दिग्गजों की आवाज सुनाई देती तो सारी थकान उतर जाती थी। तीन-साढ़े तीन महीने में फाइल तैयार हो गई। मैंने इस काम से कितना-कितना सीखा बता नहीं सकता। बाद में यही सामग्री केंद्रीय हिंदी संस्थान ने 'कोशविज्ञान' नाम से पुस्तकाकार छापी थी। इस काम के बाद मुझे कुछ कक्षाएँ दे दी गईं; सरकारी अधिकारियों (हिंदीतर भाषी) को **कार्यालयीन हिंदी** पढ़ाने के लिए। मोहन लाल सर जी मेरे मददगार थे। कहने को यह छह-सात महीने का काम था पर मेरे लिए यह अनुभव का खजाना सिद्ध हुआ। पूरी पांडुलिपि देख कर डॉ. सहाय ने मुझसे कहा था - तुमने तो दिलीप, प्रेस-कॉपी ही तैयार कर दी। तुम यार, आगे बढ़ोगे। वे भली-भाँति ये जानते थे कि ये सारे गुर मैंने श्रीवास्तव जी की सोहबत में सीख रखें हैं। उनका यह आशीर्वाद आज भी मेरे साथ है। उन्होंने मुझे अनुभव प्राप्त करने का यह पहला अवसर दिया था। यह मेरी पहली नौकरी भी थी और पहला प्रशिक्षण भी। डॉ. सहाय जैसे आदमी आज कहीं हैं, मुझे नहीं मालूम। इस पूरी अवधि का पल-पल मुझे

आज भी अक्षरशः याद है। और याद है डॉ. सहाय की आत्मीयता। वे आपके सिर पर हाथ रखने वाले इंसान थे। बिना किसी 'गुरुडम' के।

इसके बाद मैं जी-जान से शोध-कार्य में लग गया। आगरे जाता, पंडित जी को दिखाता। वे वहीं आ गए थे- 'के.एम.' के निदेशक बन कर। काम चलता रहा। थीसिस जमा हो गई। 1978 में उपाधि भी प्राप्त हो गई। डॉ. सहाय से मिलने गया। उन्होंने 'उपाधि' देखकर जोर से मेरा कंधा ठोंक दिया। वे भी आगरा जाने वाले थे। फिर मुझे फ्रांस जाने का मौका मिला। वहाँ से लौटकर हैदराबाद में नियुक्ति मिल गई। इसी बीच एक बार वे हैदराबाद आए थे। कोई कार्यक्रम था। मैं भी गया था। पूरी 'अवधि' का हाल पूछते रहे। एक दिन मैं उन्हें 'सालारजंग म्यूजियम' ले गया था। अपने हैदराबाद प्रवास में वे इसे न देख सके थे। तीसरे ही दिन वापस चले गए।

उनकी अतुलनीय आत्मीयता का एक और प्रकरण। मेरे जीवन की धारा बदलने वाला। मैं हैदराबाद में दो वर्ष बिता चुका था कि केंद्रीय हिंदी संस्थान में प्रवक्ता पद के लिए विज्ञापन निकला। प्रो. वी.रा.जगन्नाथन ने यह जानकारी दी थी। वे तब हैदराबाद केंद्र के प्रभारी थे। मैंने वर्मा जी (एस.के. वर्मा) से राय ली, वे अनमने लगे, पर मना नहीं किया। श्रीवास्तव जी को ट्रंक कॉल किया, उन्होंने तो मना ही कर दिया। वर्मा जी और श्रीवास्तव आंजनेय शर्मा जी के हितैषी मित्र थे। श्रीवास्तव ने उनकी मदद के लिए और पी.जी. विभाग के विकास के लिए मुझे हैदराबाद भेजा था। 'केंद्र' अब रूप लेने लगा था। भाषाविज्ञान संबंधी कई प्रश्न-पत्र थे। ये सब सुचारू स्वरूप लेने लगे थे। एम.फिल. के लिए भी तीन विद्यार्थी भर्ती हो चुके थे। श्रीवास्तव को यह सब जानकारी थी। फिर भी मेरे और जगन्नाथ जी के इसरार पर वे तैयार हो गए। आवेदन-पत्र भर दिया गया। साक्षात्कार केंद्रीय हिंदी संस्थान के दिल्ली केंद्र में था। तब प्रो. सहाय ही प्रभारी निदेशक थे। बड़ा बोर्ड था, वे भी थे। मुझे देख कर थोड़ा चौंके। साक्षात्कार हुआ। मेरे पास कार्य-अनुभव भी था, मानक शोध-कार्य था। दो पुस्तकें भी आ चुकी थीं- **समसामयिक हिंदी कविता** और **व्यावसायिक हिंदी**। दोनों ही 'सभा' से। कई आलेख प्रकाशित हो चुके थे। साक्षात्कार अच्छा रहा। डॉ. सहाय चुप बैठे थे, निदेशक होने के नाते उन्हें प्रश्न नहीं पूछने थे। रात में उनका फोन आया। वे श्रीवास्तव से बोले। दिलीप, हैदराबाद क्यों छोड़ रहा है, वहाँ अधिक अवसर हैं, तुमने इसीलिए उसे वहाँ भेजा है। और सूचना दी कि मेरा चयन हो गया है। मैं आगरे में उनसे मिला तो बहुत खुश नहीं लगे। मैं अपने काम में लग गया। भाषा-सर्वेक्षण भी करने थे, रिपोर्ट भी बनानी थी। प्रो. बी.जी.मिश्रा विभागाध्यक्ष थे। नए-नए अनुभव मिल रहे थे पर अध्यापन और शोध करने-कराने की कमी खलती रहती थी। सीमित प्रकार का काम था। डॉ. सहाय समाजी प्रपंचों से दूर रहने वाले व्यक्ति थे। जब मिलता तो कहते- दिलीप, तुम यहाँ ज्यादा कुछ नहीं कर पाओगे, सीमा में बंधे रहोगे। वे मुझे जान-समझ चुके थे। मेरी कार्यक्षमता को परख चुके थे। उन्हें मुझसे बहुत उम्मीदें थीं। मैं अपना काम करता रहा। वे भी क्या करते? बस अपनी मंशा जाहिर कर सकते थे, सो उन्होंने की।

अब उन्होंने एक नई राह सोची। श्रीवास्तव को बता कर उन्होंने आंजनेय शर्मा जी से बात की। एक दिन अपने कमरे में बुला कर मुझसे बोले- तुम आठ साल की सेवा के बाद ही रीडर बनने जा रहे हो। मैं अवाक् था।

वे हँसने लगे। कुछ महीनों बाद ही पी.जी. विभाग, हैदराबाद के लिए रीडर पद का विज्ञापन निकला। मैंने आवेदन किया। यहाँ भी बड़ा बोर्ड था। सहाय साहब ने अपने परम मित्र 'संस्थान' के पूर्व निदेशक प्रो. गोपाल शर्मा को भेजा था। सब तय ही था, मेरा चयन हो गया। मैं 1983 में हैदराबाद आ गया। सबसे ज्यादा प्रसन्न सहाय साहब हुए। यह सब उन्हीं का किया-धरा था। मैंने आज तक ये बातें लिखना तो दूर, किसी से कही भी नहीं हैं। पर 'जीवन' में 'स्मरण' का प्रण लिया है तो इन्हें आज लिखे दे रहा हूँ।

मैं हैदराबाद पहुँचते ही 'फॉर्म' में आ गया। अनुवाद डिप्लोमा, पत्रकारिता डिप्लोमा का पाठ्यक्रम शुरू हुआ। भाषाकेंद्रित शोध-कार्य ने गति पकड़ी। गोष्ठियों का सिलसिला शुरू हुआ। 'सभा' की पुस्तकें अद्यतन की जाने लगीं, तुलनात्मक (साहित्य) और व्यक्तिरेकी (भाषाविज्ञान) अध्ययन केंद्र में आया, 'सभा' की पत्रिकाओं में जान फूँकी गई, पुस्तकालय का भंडार समृद्ध किया गया, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय की स्थापना हुई और शिक्षा-सामग्री तैयार की और करवाई, नियमित एम.ए., बी.एड. आदि की किताबों को 'अपडेट' किया गया, प्रश्न-बैंक बने, शोध प्रबंधों की सूची बना कर वितरित की गई, कई प्रकाशन सामने आए, पी.जी. की नई पत्रिका निकली...। दक्षिण भारत में हिंदी भाषाविज्ञान को लोकप्रिय बनाना श्रीवास्तव, वर्मा जी और सहाय साहब का स्वप्न था। मैं जब दीवानावार ये सब काम कर रहा था तो ये तीनों हमेशा मेरे साथ थे। मेरे संकल्पों के पीछे इन्हीं की प्रेरणा थी। आज भी दक्षिण भारत में लोग मेरे किए गए कार्यों के कारण मेरा अतिशय आदर करते हैं। इन्हें यह नहीं मालूम कि मैं तो बस निमित्त हूँ, करने-कराने वाले कोई और हैं।

पता नहीं कैसे, मेरी जिंदगी के किसी खास बिंदु पर न जाने कहाँ से आकर डॉ. सहाय खड़े हो जाते थे। सिर्फ मेरे ही नहीं, मुझे जानने वाले कइयों के जीवन को उन्होंने बनाया-सजाया है। इन लोगों से बात करते समय जब भी सहाय साहब का नाम आता है- ये आँखें बंद करके हाथ जोड़ लेते हैं। मेरे हाथ भी उनका नाम लेते ही स्वत: आ जुड़ते हैं। आप देखिए, हिंदी के तीन मूर्धन्य हिंदी वैय्याकरण- वी.रा. जगन्नाथन, सूरजभान सिंह और चतुर्भुज सहाय उनके शिष्य थे। ये सभी आगरे की कमलानगर

धरोहर : कविता

## हे मातृभूमि

**- मैथिलीशरण गुप्त**

तेरी रज में लोट-लोटकर बड़े हुए हैं,
घुटनों के बल सरक सरक कर खड़े हुए हैं।।

परमहंस सम बाल्यकाल में सब सुख पाए,
तेरे कारण धूल-भरे हीरे कहलाए।।

पाकर तुझसे सभी सुखों को हमने भोगा,
तेरा प्रत्युपकार कभी क्या हमसे होगा।।

तेरी ही यह देह तुझी से बनी हुई है,
बस तेरे ही सुजस-वारि से सनी हुई है।।

जिस पृथ्वी में मिले हमारे पूर्वज सारे,
उससे हे भगवान! कभी हम रहें न न्यारे।।

लोट-लोट कर यहीं हृदय को शांत करेंगे,
इसमें मिलते समय मृत्यु से नहीं डरेंगे।।

तू पालित यह देह तुझी पर हम वारेंगे,
गोरव तेरे सुत होने का हम धारेंगे।।

कॉलोनी में रहते थे। चतुर्भुज सहाय तो अभी भी वहीं रहते हैं। मेरे साथ संपर्क में हैं। अभी कुछ ही माह पहले उन्होंने अपना '**हिंदी का वाक्यविज्ञान**' पुस्तक मुझे भेजी है।

प्रो. रमानाथ सहाय ने 'स्व' को नियंत्रित कर लिया था। वे अपने भीतर आसानी से देख पाते थे। उनकी आत्मा इतनी निर्मल थी कि पवित्र जल भी लजा जाय। बहुत-बहुत बाद में हम पुणे में मिले थे। एनसीईआरटी '**मानक हिंदी व्याकरण**' तैयार कर रहा था। कार्यगोष्ठी थी। भाटिया जी भी थे और श्रीवास्तव जी भी। बरसों बाद मुझे देखकर हमेशा की तरह उन्होंने मेरी पीठ थपथपाई थी। वे शाम को कार्यगोष्ठी से लौट कर अपने कमरे के सामने वाले बरामदे में कुर्सी लगा कर बैठ जाते थे। सामने फैली हरियाली को निहारते हुए। एक शाम मैं उन्हें टहलाने ले गया। पुणे विश्वविद्यालय का परिसर खूब हरा-भरा है। उन्हें अच्छा लग रहा था। मैंने पाया कि वे जल्दी ही थक गए हैं। डॉ. चतुर्भुज सहाय से मैं डॉ. साहब का हाल-चाल लेता रहता था। मैंने उनकी थकान भाँप कर बैठने का अनुरोध किया। वे मुस्कुराए। हम थोड़ी देर के लिए एक चट्टानी पत्थर पर बैठ कर वापस आ गए। श्रीवास्तव जी 'व्याकरण' का प्रारूप बना कर दो दिन बाद दिल्ली लौट गए। फिर हम लोग जुटे। डॉ. भाटिया और डॉ. सहाय के इतने निकट बैठ कर काम करने का आनंद मुझे आज भी हुलसा देता है।

बाद में मैं उनसे आगरे में मिला था- उनके घर पर। वे स्वस्थ नहीं थे। वैसे भी वे कम ही बोलते थे। उनके एक-दो वाक्य भी हमारे लिए वरदान सरीखे होते थे। मुझे वे कितना जानते-मानते थे। पर उनकी बातचीत से इस स्नेह का आभास भर ही हो पाता था। वे जताने वाले नहीं, उपकार करके भूल जाने वाले व्यक्ति थे। हर कोई उनके जैसा बन ही नहीं सकता। श्रीवास्तव जी कहते थे कि- सहाय जी मेरे सच्चे मित्र ही नहीं, बड़े भाई भी हैं। मेरे लिए वे पितृतुल्य थे। वे थे तो यह विश्वास था कि मैं कुछ भी कर सकता हूँ। मैंने कई अकादमिक कार्य केवल इसलिए किए कि उन्हें बताऊँगा तो मुझे उनका आशीर्वाद मिलेगा।

एक दिन डॉ. चतुर्भुज सहाय ने फोन पर बताया कि प्रो. सहाय हमें छोड़ कर चले गए। मुझे यह महसूस करके आश्चर्य हुआ कि उनकी यादें दंश नहीं दे रही थीं। सहला रही थीं। पल भर के लिए पूरी दुनिया ठहर गई। यह जरूर लगा कि हमारे लिए फूल बाँटने वाला चला गया। काँटे तो उनकी झोली में थे ही नहीं। बस, कोमलता ही कोमलता थी, जिंदगी ही जिंदगी थी। उनकी छाया में बैठकर जिंदगी की चुभन का अहसास ही नहीं होता था। मेरे लिए तो महा मानव थे प्रो. रमानाथ सहाय, जिन्होंने मेरे जीवन को संवारा ही नहीं, उसे सहारा भी दिया और संभाला भी। ☆

धरोहर : कविता

## हमारा देश

\- अज्ञेय

इन्हीं तृण-पूस छप्पर से
ढँके ढुलमुल गँवारू
झोंपड़ों में ही हमारा देश बसता है

इन्हीं के ढोल-मादल-बाँसुरी के
उमगते सुर में
हमारी साधना का रस बरसता है।

इन्हीं के मर्म को अनजान
शहरों की ढँकी लोलुप
विषैली वासना का साँप डँसता है।

इन्हीं में लहरती अल्हड़
अयानी संस्कृति की दुर्दशा पर
सभ्यता का भूत हँसता है।

श्रद्धांजलि

# हल्का होने का अहसास : मिलान कुंदेरा

- गोपाल शर्मा

पूर्व प्रोफेसर, अरबा मींच विश्वविद्यालय, इथियोपिया

6-3-120/23, एन.पी.ए. कॉलोनी, शिवरामपल्ली, हैदराबाद-500052

"और जल्दी ही युवती सिसकी लेने की बजाए ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी और वह यह करुणाजनक पुनरुक्ति दोहराती चली गई, मैं मैं हूँ, मैं मैं हूँ, मैं मैं हूँ ...."

जब अचानक मिलान कुंदेरा के निधन का समाचार सुना तो उनकी एक कहानी के अनुवाद की ये अंतिम पंक्तियाँ याद आ गईं। 'लिफ्ट लेने का खेल' (अनुवाद सुशांत सुप्रिय) नामक यह कहानी मैंने पिछले ही दिनों 'समालोचन' में पढ़ी थी। न्यूयॉर्क टाइम्स में 11 जुलाई, 2023 को श्रद्धांजलि-स्वरूप समाचार प्रकाशित हुआ, "अपने मूल चेकोस्लोवाकिया के श्रमिकों के स्वर्ग में जीवन की दमघोंटू गैरबराबरी को दर्शाने वाले मार्मिक, यौन आधारित उपन्यासों से वैश्विक साहित्यिक सितारे बन गए कम्युनिस्ट पार्टी से निष्कासित नेता मिलान कुंदेरा का मंगलवार को पेरिस में निधन हो गया। वे 94 वर्ष के थे।" कुंदेरा के अभिन्न मित्र उपन्यासकार सलमान रुश्दी श्रद्धांजलि देते हुए लिखते हैं, 'सभी महान लेखकों की तरह, मिलान कुंदेरा भी अपने पाठकों की कल्पना पर अपनी अमिट छाप छोड़ते हैं। जब से मैंने "सत्ता के विरुद्ध मनुष्य का संघर्ष भूलने के विरुद्ध स्मृति का संघर्ष है" वाक्य को उनकी 'द बुक ऑफ लाफ्टर एंड फॉरगेटिंग' में पढ़ा है, यह मेरे दिलो-दिमाग पर छाया हुआ है। इसने दुनिया भर की घटनाओं के बारे में मेरी समझ को चेतना प्रदान की है।

लेखक होने की असहनीय शिथिलता ढोनेवाले इस मजाकिया किस्म के मिलान का अब 'मैं' नहीं रहा; 'अहं' समाप्त हुआ; 'वयं' रह गया। उनकी जिद और लाचारी सब स्वाहा हो गई। उनकी ही पंक्ति है, 'आदमी सोचता है, भगवान हँसता है।' और कुंदेरा का खुद-ब-खुद लगाया गया कुंदेरी ठहाका यूट्यूब पर रह गया, "लेकिन भगवान क्यों हँसते हैं? क्योंकि मनुष्य सोचता है, और सत्य उससे दूर हो जाता है। क्योंकि जितना अधिक मनुष्य सोचते हैं, उतना ही अधिक एक मनुष्य के विचार दूसरे से भिन्न होते हैं। और अंततः सब समाप्त हो जाता है क्योंकि मनुष्य कभी भी वैसा नहीं होता जैसा वह सोचता है कि वह है।" चेक भाषा में कहे गए फ्रेंच से अंग्रेजी में आए और फिर मेरे द्वारा हिंदी में लाए गए इस महान साहित्यकार के ये शब्द ही तो अब बचे हैं।

कुंदेरा ने 'इम्मोरटेलिटी' उपन्यास के उपसंहार के दौरान संकेत देते हुए लिखा है कि चंचलता और चुलबुलापन उनके लेखन की एक महत्वपूर्ण युक्ति है। कुछ कुछ वैसे ही उन्होंने 'द गार्जियन' में भी एक बार उल्लेख किया था कि 'होने के हल्केपन' की अवधारणा हमें चेतावनी देती है कि हमारा यह जीवन हमें किसी संशोधन करने या पुनर्जीवन की अनुमति नहीं देता। हमारा यह जीवन हमारे लिए कभी कभार 'असहनीय' हो सकता है, लेकिन अंततोगत्वा यह 'मुक्तिदायक' ही होता है। वास्तव में पुरुषों के अगंभीर और उथले प्रलाप के कई अंश पढ़कर आप भी कुंदेरा के लेखन की गंभीरता पर संदेह करने लग पड़ोगे। वे प्रेम को गंभीरता से न लेने की जैसे कसम खाए हुए होते हैं। उनका प्रेमालाप कुछ यूँ शुरू होता है- 'एक विचार ने मुझे मोहित कर लिया; मैं

वास्तव में इसमें शामिल हो गया...' (और इसके बाद जो होता है वह एक चुलबुला और बचकाना और कभी कभी मर्दाना लेकिन असंगत तर्क होता है)। कुंदेरा ऐसा तर्क देते हैं जैसा एक आम आदमी बात-बेबात को सिद्ध करने के लिए कह दिया करता है। उदाहरण के लिए वे झट से लिख देते हैं कि एक महिला केवल एक स्त्री-द्वेषी के साथ खुश रह सकती है, या दूसरी ओर, किसी ऐसे व्यक्ति के साथ जो नारीत्व से प्यार करता है।

मैंने मिलान कुंदेरा का नाम पहले पहल हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर के मुखारविंद से कई दशक पहले सुना था और तब उनकी विद्वत्ता से प्रभावित हो कर रह गया था। मैं उन्हें अच्छी तरह जानता न था। फिर उन्हें जानने लगा। जान गया कि मिलान कुंदेरा दिल में आते हैं, समझ में नहीं। व्यक्ति मिलान को जानना बहुत कठिन काम है। जेरेड मार्सेल पोलेन के शब्दों में, 'उन्होंने कभी किसी को अपनी जीवनी लिखने के लिए अधिकृत नहीं किया, फोटो खींचने या उद्धृत करने से भी इंकार कर दिया और अपने मित्रों को उनके बारे में सार्वजनिक रूप से बोलने से सख्त मना किया। अपने लेखन के हर पहलू को नियंत्रित करने के लिए कुख्यात, मिलान अनुवादकों के साथ बड़ी बेरहमी से पेश आते थे और गलतियों को खोद-खोद कर सुधरवाते थे। अपने प्रारंभिक लेखन के पुनर्प्रकाशन की अनुमति नहीं देते थे। यहाँ तक कि अपनी पुस्तकों के कवर के लिए कलाकृति के रूप में केवल खुद के बनाए रेखाचित्रों का उपयोग किया करते थे। उन्होंने एक बेदाग कैनन को अपने पीछे छोड़ने की योजना बनाई थी, जिसमें वे किसी को एक अल्पविराम भी इधर-उधर करने की इजाजत देकर नहीं गए हैं।' यह बात दूसरी है कि उनकी एक नहीं दो दो जीवनियाँ उपलब्ध हैं। और अनधिकृत अनुवादों की तो पूछिए ही मत। कुंदेरा ने अपनी सभी चेक-रचनाओं के फ्रेंच अनुवादों को स्वयं संशोधित किया और जोर देकर कहा कि उन्हें एक फ्रांसीसी लेखक के रूप में जाना जाए, और उनके लेखन को फ्रांसीसी साहित्य की परंपरा के अंतर्गत माना जाए। वे अपने बाद के लेखन को चेक भाषा में अनूदित कराने के लिए भी राजी न थे। इसीलिए 'लाइफ इज़ एल्सव्हेयर' नामक कृति का अनुवाद 43 साल बाद 2016 में ही संभव हो सका।

ऐसी घटाटोप स्थिति में उन्हें समझने के लिए यही बेहतर है कि उनके उपन्यास और निबंध पढ़े जाएँ। इसलिए मैं उन्हें जितना हो सका, अनुवाद के माध्यम से ही पढ़ सका। उनके बारे में सलमान रुश्दी (सलमान के एक पुत्र का नाम 'मिलान' है) का एक संस्मरण पढ़ा जिसमें कुंदेरा अपनी लचर अंग्रेजी पर लाचारी दिखाते हैं। 'एक बार मेरी पत्नी वेरा को ऑक्सफोर्ड में एक कॉन्फ्रेंस में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया गया था। मौके का फायदा उठाते हुए मैंने अंग्रेजी भाषा पर अपनी पकड़ को बेहतर बनाने के लिए अंग्रेजी सीखने की कुछ क्लासों में बैठने का फैसला किया। कोर्स के अंत तक मेरी अंग्रेजी कुछ भी बेहतर नहीं हो सकी, पर प्रशिक्षक की अंग्रेजी बहुत खराब हो गई। प्रशिक्षक महोदय ने चलते चलते मुझसे यह वचन ले लिया कि मैं अब फिर कभी उनसे पढ़ने न आऊँगा।'

उनके एक उपन्यास 'द जोक' के हरि मोहन शर्मा द्वारा किए गए हिंदी अनुवाद के बारे में भी पता चला। यह भी पता चल गया कि हमारे निर्मल वर्मा ने साठ के दशक में ही कुंदेरा को जान लिया था और जिस कहानी को सुशांत जी ने अब हिंदी में उतारा है, उसे आधी शताब्दी पहले 'खेल खेल में' शीर्षक से निर्मल वर्मा पहले ही पेश कर चुके थे। निर्मल वर्मा ने तो एक और कहानी का भी अनुवाद किया था। 'मैं एक पीड़ित ईश्वर' के शीर्षक से छपी इस कहानी को भी निर्मल वर्मा ने हिंदी में तब ला दिया था जब कुंदेरा की ख्याति इतनी न थी जितनी आज है।

1966 में वर्मा जी ने ये कहानियाँ हमें सीधे चेक भाषा से अनूदित करके दी थीं, वाया अंग्रेजी नहीं। तब निर्मल वर्मा ने सच ही लिखा था, 'साहित्य की शायद ही कोई विधा उनकी कलम से अछूती बची रह गई हो।' हरीश त्रिवेदी ने इसे सही पकड़ा है कि हमारे निर्मल ने कुंदेरा की प्रतिभा तभी पहचान ली थी जब उस पूत के पाँव पालने में ही थे। हिंदी के आम पाठक उन्हें वाया निर्मल वर्मा भी कम ही जानते हैं।

मिलान कुंदेरा के द्वारा लिखित पुस्तकें हिंदी में आम आदमी को चाहे आसानी से उपलब्ध न भी हों फिर भी वे विद्वत-चर्चा में रहते चले जा रहे हैं। इस साहित्यकार का नाम शहर 'मिलान' के नाम पर नहीं है जो रोमन नाम 'मेडियोलेनम' ('मैदान के बीच में') से आया है। व्यक्ति 'मिलान' स्लाव मूल 'मिल' से बनकर आया है जिसका अर्थ 'दया' और 'प्यार' है। सलमान रुश्दी ने अपने एक उपन्यास 'जोसेफ अंटन' में इस नाम के बारे में कुछ यूँ लिखा है, 'इसी दौरान, एक दूसरा नाम 'मिलान', मिलान कुंदेरा जैसा, प्रस्तावित किया गया। हाँ, यह एक ऐसा नाम भी है जिसका भारतीय भाषाओं में एक क्रिया शब्द 'मिलना-मिलाना' से संबंध मिलता है। मिलान इस प्रकार से मिलना और सामंजस्य स्थापित करना हुआ। वस्तुतः जिस लड़के में इंग्लैंड और इंडिया मिल गए थे, उसके लिए यह कोई उचित नाम न था।' अमिलनसार मिलान के लिए शायद 'यथा नाम तथा गुण' की उक्ति चरितार्थ नहीं होती।

मिलान कुंदेरा एक चेक उपन्यासकार, नाटककार, निबंधकार और कवि थे। उनका जन्म 1929 में 'ब्रनो' (चेकोस्लोवाकिया) में हुआ था और उन्होंने प्राग विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र और सौंदर्यशास्त्र का अध्ययन किया था। एक प्रसिद्ध कॉन्सर्ट पियानोवादक और संगीतज्ञ, लुडविक कुंदेरा के पुत्र युवा कुंदेरा ने संगीत का अध्ययन किया, लेकिन धीरे-धीरे लेखन की ओर रुख किया। उन्होंने 1952 में प्राग में संगीत और नाटकीय कला अकादमी में साहित्य पढ़ाना शुरू कर दिया और कई कविता-संग्रह प्रकाशित किए। 1950 के दशक में 'पॉस्लेडनी माज' (1955; 'द लास्ट मे'), और 'मोनोलॉजी' (1957; 'मोनोलॉग्स') अपने व्यंग्यपूर्ण और कामुकता के अतिरेकी स्वर के कारण चेक राजनीतिज्ञों और अधिकारियों द्वारा बेकार बता दिए गए।

अपने शुरुआती करियर के दौरान वे कम्युनिस्ट पार्टी में आते-जाते रहे थे। 1948 में शामिल हुए, 1950 में निष्कासित कर दिए गए, और 1956 में फिर से शामिल हुए। कुंदेरा ने 1967-68 में चेकोस्लोवाकिया में हो रहे कुछ उदारवादी आंदोलनों में भाग लिया था। देश पर सोवियत कब्जे के बाद उन्होंने अपनी राजनीतिक गलतियों को स्वीकार करने से इनकार कर दिया और परिणामस्वरूप अधिकारियों के कोपभाजन बने। उनके सभी कार्यों और लेखन की भरपूर निंदा हुई और उन पर प्रतिबंध लगा दिया गया। यही नहीं उन्हें उनके सभी पदों और कम्युनिस्ट पार्टी से बाहर भी कर दिया। दैवयोग से 1975 में कुंदेरा को फ्रांस में रेन्नेस विश्वविद्यालय (1975-78) में अध्ययन-अध्यापन का अवसर मिल गया और वे चेकोस्लोवाकिया से अपनी पत्नी वेरा ह्राबनकोवा के साथ फ्रांस में जा बसे। 1979 में चेक सरकार ने उनसे उनकी चेक नागरिकता भी छीन ली। वैसे 40 वर्ष तक मातृभूमि से बेदखल रहने के बाद मृत्यु से कुछ वर्ष पूर्व 2019 में बहाल कर दिया गया था। अगले वर्ष 2020 में उन्हें नागरिकता का प्रमाणपत्र भी दे दिया गया। पर जीवन के अंतिम कुछ महीनों में वे उसका करते भी क्या? बस उसे लेकर शून्य की ओर ताकते हुए आभार के दो शब्द भर बोले, 'डेकूजी' ('थैंक यू!')। मिलान का देहावसान अपने देश में नहीं, फ्रांस में हुआ। यूरोप में हुआ जिसे वे ताउम्र 'न्यूनतम स्पेस में अधिकतम विविधता' वाला स्थान कहते

रहे और खुद के 'अन्यत्र'(एल्सवेयर) होने का संताप झेलते रहे। जनवरी 1, 2007 को अंग्रेजी में प्रकाशित अपने विस्तृत आलेख 'हाउ वी रीड वन अनदर' (डाई वेल्टलिटरेचर) का प्रारंभ वे कुछ इस प्रकार करते हैं:

'कोई भी यूरोपीय, चाहे वह राष्ट्रवादी हो या विस्तारवादी, अपनी जड़ों से जुड़ा हो या उखड़ा हुआ। किंतु अपनी मातृभूमि के साथ अपने संबंध को लेकर गहराई से प्रभावित होता है। अन्य स्थानों की तुलना में यूरोप में राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद की समस्या अधिक जटिल और गंभीर हो सकती है, लेकिन किसी भी दृष्टि से यह सबसे अलग है। कारण यह है कि इसके साथ एक और विशिष्टता जुड़ गई है। बड़े राष्ट्रों के साथ-साथ, यूरोप में छोटे राष्ट्र भी हैं और जिनमें से कई ने पिछली दो शताब्दियों में अपनी राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त की है या पुनः प्राप्त कर ली है। उनके अस्तित्व ने मुझे यह समझाया है कि सांस्कृतिक विविधता एक महान यूरोपीय मूल्य है। उस समय में जब रूसी विस्तारवाद ने मेरे छोटे से देश को अपनी इच्छा के अनुसार नया आकार देने की कोशिश की, तब मैंने यूरोप का अपना आदर्श इस प्रकार तैयार किया - न्यूनतम स्थान में अधिकतम विविधता। यूँ तो रूसी अब मेरी जन्मभूमि पर शासन नहीं करते, लेकिन वह आदर्श अब और भी संकट में है।'

उनका पहला उपन्यास 'द जोक' 1967 में प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण और व्यावसायिक सफलता थी, और इसने कुंदेरा को एक प्रमुख साहित्यकार के रूप में स्थापित किया। 'जोक' उपन्यास चेकोस्लोवाकिया में कम्युनिस्ट शासन पर एक करारा व्यंग्य है और 1968 के सोवियत आक्रमण के बाद उनके देश में इस पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। कुंदेरा 1975 से 11 जुलाई, 2023 को अपनी मृत्यु तक फ्रांस में निर्वासन में रहे, साथ ही उनके लेखन पर चेकोस्लोवाकिया में बहुत समय तक प्रतिबंध जारी रहा। लेकिन कुंदेरा पश्चिम में खूब प्रकाशित होते रहे।

'द जोक' 1967 में प्रकाशित चेक लेखक मिलान कुंदेरा का उपन्यास है। उपन्यास लुडविक जाह्न नाम के एक युवक की कहानी है जो अपनी प्रेमिका मार्केटा को एक चुटकुला भेजता है, जिसे अधिकारियों द्वारा एक राजनैतिक बयान के रूप में गलत समझा जाता है। परिणामस्वरूप, लुडविक को विश्वविद्यालय से निष्कासित कर दिया जाता है, कैद कर लिया जाता है और एक श्रमिक शिविर में काम करने के लिए मजबूर किया जाता है। उपन्यास सत्ता, सेंसरशिप और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की सीमाओं के विषयों की पड़ताल करता है। उपन्यास का एक उद्धरण इसके सार को दर्शाता है-'जोक किसी बात को कहने का एक विवेकपूर्ण तरीका है जिसे सीधे तौर पर कहना खतरनाक हो सकता है।' यह उद्धरण बताता है कि चुटकुलों का उपयोग उन विचारों को व्यक्त करने के लिए किया जा सकता है जिन्हें अन्यथा सेंसर कर दिया जाएगा या दबा दिया जाएगा। हालांकि, यह चेतावनी भी देता है कि चुटकुले खतरनाक हो सकते हैं, क्योंकि उनकी गलत व्याख्या की जा सकती है और लोगों को नुकसान पहुँचाने के लिए उनका उपयोग किया जा सकता है। लुडविक एक तेजतर्रार, बुद्धिमान और लोकप्रिय छात्र था। वह अपने अधिकांश मित्रों की तरह कम्युनिस्ट शासन का समर्थन करता था। अपने ग्रीष्म अवकाश के दौरान उसकी कक्षा की एक लड़की ने उसे खुशी-खुशी मार्क्सवाद की 'आशावादी युवाओं के स्वस्थ भावना से भरे रहने' की खूबी के बारे में लिखा। इस पर लुडविक ने व्यंग्यात्मक लहजे से उत्तर दिया, 'आशावादिता मानव जाति के लिए अफ़ीम है ! एक स्वस्थ आत्मा से मूर्खता की दुर्गंध आती है ! ट्रॉट्स्की जीवित रहें !' हल्का होने के इस अंदाज और हँसी-मज़ाक में कही गई यह बात जी का जंजाल बन गई। 'द जोक' एक

जटिल और विचारोत्तेजक उपन्यास है। यह शब्दों की शक्ति और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के महत्व की पड़ताल करता है। यह उत्तर-आधुनिक युग की एक क्लासिक है। इसकी प्रासंगिकता आज भी है। स्टैन्ड-अप कॉमेडियनों का कारावास-प्रवास यही तो है। 1968 में 'द जोक' को चेक न्यू वेव के निर्देशक जारोमिल जिरेस द्वारा एक फिल्म में रूपांतरित किया गया था। फरवरी 1969 में रिलीज़ हुई यह फ़िल्म बाद में प्रदर्शन से हटा ली गई और इसे 20 वर्षों तक प्रतिबंधित ही रखा गया।

1970 और 80 के दशक में उनके उपन्यास, जिनमें 'वाल्सिक ना रोज़्लौसेनौ' (1976; 'फेयरवेल वाल्ट्ज'; द फेयरवेल पार्टी), 'निहा स्मिचू ए जैपोम्नेनी' (1979; द बुक ऑफ लाफ्टर एंड फॉरगेटिंग) और 'नेस्नेसिटेलना लेहकोस्ट बायटी' (1984; द अनबियरेबल लाइटनेस ऑफ बीइंग) आदि प्रकाशित हुए। कुंदेरा की प्रतिभा के व्यापक चिह्न हमें 'एल आर्ट डू रोमन' (1986; द आर्ट ऑफ द नॉवेल), 'लेस टेस्टामेंट्स ट्रैहिस' (1993; टेस्टामेंट्स बेट्रेयड), 'ले रिड्यू' (2005; द कर्टेन), और 'यूने रेनकॉन्ट्रे' (2009; एनकाउंटर) आदि रचनाओं में भी दिखाई देते हैं। उन्होंने अपना अंतिम उपन्यास, 'द फेस्टिवल ऑफ इनसिग्निफिसेंस' (2015) पेरिस में रहते हुए पूरा किया। कुंदेरा के लेखन का हिंदी सहित 40 से अधिक भाषाओं में अनुवाद किया गया है। उन्होंने फ्रांज काफ्का पुरस्कार और जेरूसलम पुरस्कार सहित कई पुरस्कार जीते हैं। उन्हें 20वीं सदी के सबसे महत्वपूर्ण लेखकों में से एक माना जाता है। हालांकि उन्हें साहित्य का नोबेल पुरस्कार न मिल सका, यह अजीब लगता है।

कुंदेरा के सबसे प्रसिद्ध उपन्यासों में 'द अनबियरेबल लाइटनेस ऑफ बीइंग', 'द बुक ऑफ लाफ्टर एंड फॉरगेटिंग' और 'आइडेंटिटी' शामिल हैं। 'द अनबियरेबल लाइटनेस ऑफ बीइंग' कुंदेरा का सबसे प्रसिद्ध उपन्यास है। यह 1984 में प्रकाशित हुआ था और आज तक एक अंतरराष्ट्रीय बेस्टसेलर है। उपन्यास प्रेम, क्षति और जीवन के अर्थ की प्रकृति पर एक दार्शनिक चिंतन है। 'द बुक ऑफ लाफ्टर एंड फॉरगेटिंग' निबंधों और कहानियों का एक संग्रह है। यह 1978 में प्रकाशित हुआ था और चेकोस्लोवाकिया में प्रतिबंधित कर दिया गया था। पुस्तक के निबंध स्मृति, इतिहास और शब्दों की शक्ति के विषयों का पता लगाते हैं। यह रचना मानव स्मृति और ऐतिहासिक सत्य को नकारने और मिटाने की आधुनिक राज्य की प्रवृत्ति पर व्यंग्यपूर्ण कटाक्ष है। 'आइडेंटिटी' कुंदेरा का एक दूसरा उपन्यास है। यह 1991 में प्रकाशित हुआ था और यह पहचान की प्रकृति और हमारे आत्मबोध को आकार देने में स्मृति की भूमिका पर एक सघन चिंतन है। 2014 में उनके अंतिम उपन्यास 'द फेस्टिवल ऑफ इनसिग्निफिसेंस' को 'आशा और ऊब के बीच की ऊहापोह' के रूप में देखा गया।

वस्तुतः कुंदेरा का जीवन, लेखन और उनके विचार सब अजीब से ही हैं। इनका उद्देश्य क्या है? न्यूयॉर्क टाइम्स के ही अपने एक मित्र फिलिप रोथ से कुंदेरा ने एक बार कहा था, 'मुझे ऐसा लगता है कि आजकल पूरी दुनिया में लोग समझने के बजाय निर्णय करना पसंद करते हैं, पूछने के बजाय जवाब देना पसंद करते हैं।' 1980 में न्यूयॉर्क टाइम्स बुक रिव्यू में भी इसी ओर संकेत देकर कहा गया था कि 'इस लेखक का असली काम अपने जीवनकाल में अपने देश के विनाशकारी इतिहास की छवियाँ ढूँढ़ना है।' कुंदेरा अपने लेखन के माध्यम से अपने विचार व्यक्त करते हैं और उनकी विचारधारा सदा पहले जैसी ही रहती है। उन्होंने एक बार लिखा था, 'मेरे हर उपन्यास का शीर्षक 'द अनबियरेबल लाइटनेस ऑफ बीइंग' या 'द जोक' या 'लाफेबल लव्स' हो सकता है; शीर्षक परस्पर परिवर्तनशील हो सकते हैं, वे उन सभी मुद्दों की छोटी संख्या को दर्शाते हैं जो मुझ पर सदा हावी रहते चले

आए हैं, मुझे परिभाषित करते हैं, और दुर्भाग्य से, मुझे प्रतिबंधित भी करते हैं। इन विषयों के अलावा, मेरे पास कहने या लिखने के लिए और कुछ नहीं है।' कुंदेरा के विचार में उपन्यास एक विधा मात्र नहीं है। यह मानव स्वभाव और हमारे प्रारब्ध के बारे में फैले हुए या फैलाए गए असंख्य झूठों को तोड़ने का एक उपक्रम है। ऐसे झूठ जो नौकरशाही और राजनीति के माध्यम से निजी स्वार्थों, लालच और सत्ता की अंतहीन लोलुपता को पूरा करने के लिए फैलाए जाते हैं। इसलिए कुंदेरा अपनी रचनाओं में जो कहते हैं वह बिना लग-लपेट के सीधा कहते हैं।

सही बात है कि इनकी रचनाओं में डिकोड करने के लिए कोई प्रतीक नहीं हैं, इकट्ठा करने के लिए कोई वैकल्पिक अर्थ नहीं हैं। लेखक पहले से ही समझाए गए, पहले से ही डिकोड किए गए उपन्यास को प्रस्तुत करता है। यह एक वास्तविक संभावना को दर्शाता है जिसमें हर उपन्यास पूरी तरह से सक्षम है। कुंदेरा का हर उपन्यास उपन्यास की अनंत क्षमताओं का बचाव करने और इसे अज्ञात क्षेत्र में ले जाने के बारे में होता है। 'द आर्ट ऑफ़ द नॉवेल' या उनके बाद के उपन्यासेतर रचना संसार में से भी यदि आप किसी दूसरी रचना को पढ़ते हैं तो कोई खास फरक नहीं पड़ता। कुंदेरा का समस्त लेखन एक ही आधार पर स्थित है। कुंदरा के उपन्यासों में रचना के दो औपचारिक आधार हैं: (1) पॉलीफोनी अर्थात एक को छोड़कर इनके सभी उपन्यास सात खंडों में समाप्त होते हैं, (2) इनके लेखन में प्रहसन, नाटकीयता, कटाक्ष, उपहास आदि की भरमार है किंतु अतिरेक और असंभव को छोड़ दिया गया है।

कुंदेरा अपने उपन्यासों के महिला चरित्रों के चित्रण में विशेष रूप से इतने निर्लज्ज और निर्दयी रहे हैं कि ब्रिटिश नारीवादी जोन स्मिथ ने अपनी 1989 की पुस्तक 'मिसोजिनीज़' में घोषणा की थी कि 'महिलाओं के बारे में कुंदेरा का समस्त लेखन शत्रुता से भरा प्रतीत होता है। जब वे अपने पुरुष पात्रों का चित्रण करते हैं, तो वह दुनिया को उनके नजरिए से देखते हैं; और जब वह अपनी स्त्रियों का चरित्र गढ़ते हैं, तो वे उन्हें दर्पण के सामने रखकर उनसे कहते हैं कि वे सामने देखते हुए अपने कपड़े उतार दें।' एक फिनिश फेमनिस्ट कटीज कैल के अनुसार, 'ऐसा प्रतीत होता है कि कुंदेरा अपने महिला पात्रों का उपयोग मुख्य रूप से अपने दार्शनिक मत को प्रतिपादित करने के लिए करते हैं, और फिर उस विचार और दर्शन को अपने पुरुष-पात्रों का वर्णन करने के लिए एक उपकरण के रूप में इस्तेमाल करते हैं।'

मिलान कुंदेरा कहानीकार के रूप में अजब-गजब और चकाचक से भरपूर कलमकार हैं। एक कहानी में एक युवक और उसकी प्रेमिका यह दिखावा करते हैं कि वे अजनबी है जिसे उन्होंने सड़क चलते लपक लिया है। फिर प्रेम-क्रीड़ा जैसे-जैसे आगे बढ़ती है, वे एक-दूसरे के लिए सच में ही अजनबी बन जाते हैं। एक कहानी है जिसमें एक शिक्षक एक सुसंस्कृत लड़की को लुभाने के लिए धर्मपरायणता का दिखावा करता है, फिर उसे अपमानित कर छोड़ देता है और संन्यासी बन जाता है। एक और कहानी है जिसमें लड़कियाँ बार में, समुद्रतटों पर और स्टेशन के प्लेटफार्मों पर एक अधेड़ उम्र के डॉन जुआन का इंतजार करती हैं। और वह है कि अपनी पत्नी के पास घर चला जाता है। प्रेम न हुआ, कोई खेल हो गया जिसमें पुरुष अपनी कल्पना के घोड़े खोलकर, योजना बनाकर और छल प्रपंच से तीर निशाने पर लगाता है। कामातुर पात्र अलग-अलग तरीकों से अपने आवेगों को संभालते और समेटते हैं। 'लज्जा नहीं आई' कहने वाला कोई नहीं मिलता। लगता है जैसे वात्स्यायन और फ्रायड को इसने घोंट लिया है और उसमें उसने उपहास और विरोधाभासों की चाशनी लगाकर गल्प की

शक्ल में परोस दिया है। जीवन ऐसा भी क्रूर, अपमानजनक और हास्यास्पद हो सकता है, आप समझ नहीं पाएँगे। 'बैठे ठाले' के प्रेम को जानने समझने वाले प्रेम की इस 'उपहासपूर्ण भंगिमा' के कायल चाहे न भी हों, इससे घायल जरूर हो जाएँगे। 'लाफेबल लव' संग्रह की कहानियाँ ऐसी ही हैं। इनमें हिरण्मय पात्र के भीतर छिपे सत्य को अनावृत करके तार तार करके पेश किया गया है। 'पर्दानशी को बेपर्दा' करके रख देने वाला कुंदेरा ऐसा ही है। फिलिप रोथ को अपने लेखन में 'सेक्स' के चित्रण को लेकर उन्होंने कहा था, 'मेरे लिए सब कुछ महान कामुक दृश्यों के द्वारा नियत होता है। मुझे लगता है कि शारीरिक प्रेम का एक दृश्य एक अत्यंत तेज़ रोशनी उत्पन्न करता है जो यक-ब-यक पात्रों के मानसिक प्रवाह को रू-ब-रू करता है और उनकी जीवन स्थितियों की झलक से आगे बढ़कर उनका सार प्रस्तुत करता है।'

'द अनबियरेबल लाइटनेस ऑफ बीइंग' एक युवा जोड़े और उनके कुत्ते की कहानी है जो सोवियत आक्रमण के दौरान रह रहे थे। 'अस्तित्व का हल्कापन' नीत्शे की उस अवधारणा पर ठोस प्रतिक्रिया है कि ब्रह्मांड एक लूप में अंतहीन रूप से विद्यमान है, जिसमें सब कुछ पहले से ही उसी तरह घटित हो रहा है जैसा वह है। कुछ पात्र नीत्शे के विचारों के बोझ तले संघर्ष करते हैं, जबकि कुछ यह मानकर चलते हैं कि सब कुछ केवल एक बार होता है - इसलिए अस्तित्ववाद का बोझ असहनीय नहीं रहता। मिलान अपने इस प्रतिनिधि उपन्यास 'दि अनबियरेबल लाइटनेस ऑफ बीइंग' के कुछ पात्रों जैसे टॉमस (एक चेक सर्जन और बुद्धिजीवी), टेरेज़ा (टॉमस की युवा पत्नी), सबीना (टॉमस की तथाकथित प्रेमिका और सबसे करीबी दोस्त), फ्रांज (सबीना का प्रेमी और जिनेवा का आदर्शवादी प्रोफेसर), कारेनिन (टॉमस और टेरेज़ा का कुत्ता) और सिमोन (टॉमस का पिछली शादी से हुआ पुत्र) के माध्यम से 60 के दशक का चित्रण करते हैं। 1968 के प्राग वसंत से लेकर सोवियत संघ और तीन अन्य वारसा संधि वाले देशों द्वारा चेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण के दौरान चेक समाज के कलात्मक और बौद्धिक जीवन की पड़ताल करती यह रचना प्रेम और सेक्स के हल्केपन को दिखाती है। वे प्यार को क्षणभंगुर, बेतरतीब और उलझाव भरा बताते हुए कहते हैं-

> जितना अधिक बोझ होगा, हमारा जीवन उतना ही अधिक पृथ्वी के करीब आएगा, उतना ही अधिक वास्तविक और सच्चा हो जाएगा। इसके विपरीत, बोझ की पूर्ण अनुपस्थिति के कारण मनुष्य हवा से भी हल्का हो जाता है, ऊँचाइयों पर चढ़ जाता है, पृथ्वी और उसके सांसारिक अस्तित्व को छोड़ देता है और केवल आधा वास्तविक बन जाता है। उसकी गतिविधियाँ जितनी स्वतंत्र होती हैं उतनी ही महत्वहीन होती हैं। तो फिर हम क्या चुनें? भारीपन या हल्कापन? ...जब हम अपने जीवन में किसी नाटकीय स्थिति को अभिव्यक्ति देना चाहते हैं, तो हम भारीपन के रूपकों का उपयोग करते हैं। हम कहते हैं कि कोई चीज़ हमारे लिए बहुत बड़ा बोझ बन गई है। हम या तो बोझ उठाते हैं या असफल होते हैं और इसके साथ नीचे चले जाते हैं, हम इसके साथ संघर्ष करते हैं, जीतते हैं या हारते हैं। और सबीना- उसके ऊपर क्या आ गया था? कुछ नहीं। उसने एक आदमी को छोड़ दिया था क्योंकि उसे ऐसा लग रहा था कि वह उसे छोड़ रही है। क्या उसने उस पर अत्याचार किया था? क्या उसने उससे बदला लेने की कोशिश की थी? नहीं, उनका नाटक भारीपन का नहीं बल्कि हल्केपन का नाटक था। जो कुछ उसके हिस्से में आया वह बोझ नहीं था, बल्कि अस्तित्व का असहनीय हल्कापन था। (पृष्ठ 3-64)☆

धरोहर - लघुकथा

# बिल और दाना

- रांगेय राघव

एक बार एक खेत में दो चींटियाँ घूम रही थीं। एक ने कहा, 'बहन, सत्य क्या है?' दूसरी ने कहा 'सत्य? बिल और दाना!'

उसी समय एक मधुमक्खी ने सरसों के विशाल, दूर-दूर तक फैले खेत को देखा। क्षितिज तक फूल ही फूल खिले हुए थे। दो आदमी उस खेत में घूम रहे थे। एक ने कहा, 'इन फूलों के बीच में चलते हुए ऐसा लगता है, जैसे हम किसी उपवन में घूम रहे हों।'

दूसरे ने कहा, 'कैसी मादक गंध हवा पर बह रही है।'

मधुमक्खी ने सुना और मुस्कराकर फूल में अपना मुँह लगाया और मन ही मन कहा, 'बेचारे! कितने लाचार हैं ये लोग। सरसों के बीज से तेल निकालना जानते हैं, लेकिन उसके फूलों का रस लेना नहीं जानते।'

यह सुनकर चींटियाँ बिल में आ गईं।

यह बात आई-गई हो गई। फागुन ने हवा में मस्ती भरी, चैत ने कोयल के स्वर गुँजाए और कुछ दिन बाद सैकड़ों मक्खियों ने असंख्य फूलों का शहद ला लाकर पीपल के तने पर एक बड़ा-सा छत्ता लगा दिया। दोनों चींटियों का भी आना जाना वहीं से था। वे भी सब देखती रहीं ।

फसल काटकर वे ही दोनों आदमी उसी पीपल के नीचे बैठे और ऊपर जो नज़र पड़ी तो एक ने कहा 'अरे! क्या ज़ोर का छत्ता लगाया है मक्खियों ने! खूब मिलकर काम करती हैं ये। अपने खाने का इन्तज़ाम भी खूब करती हैं।'

दूसरे ने कहा, 'आज रात को कंबल देना मुझे थोड़ी देर को। मैं इसको तोड़ूँगा।'

मक्खियों ने सुना नहीं; क्योंकि वे अपने निर्माण में व्यस्त थीं। अंधेरा हो गया और मक्खियाँ छत्ते पर जा बैठीं। दूसरा आदमी कंबल ओढ़े चढ़ गया और उसने मक्खियों को झाड़ू से हटाकर अंधेरे में छत्ता तोड़ लिया और उतर आया।

मक्खियों पर वज्र टूट पड़ा, लेकिन बेचारी क्या करतीं। वे यह भी नहीं पहचान पाईं कि उनकी उगलन को कौन ले गया। उन्होंने कंबल जैसी किसी चीज़ को काटा, वह दर्द को महसूस ही नहीं करती थी। आखिर करती भी क्यों?

यों एक सपना उजड़ गया।

दोनों आदमियों ने शहद बोतलों में भरकर रख लिया। उधर मनुष्य का कल्याण करने को एक संत निकले हुए थे। वे दही और शहद ही खाते थे। वे उपदेश यही देते थे कि सब कुछ दान कर दो; अपने पास कुछ मत रखो।

संस्कृति का नया युग प्रारंभ करो।

जब यह उपदेश देते हुए वे गाँव आए, तो इन दोनों पर उनकी अहिंसक वाणी का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा और उन्होंने उन्हें शहद भेंट कर दिया, जिसे देखकर संत की आँखें चमकने लगीं।

दुपहर हो गई तो उसी पीपल की छाया में संत बैठ गए और अपनी रोटी में उसी शहद को लगाकर खाने लगे।

दो मक्खियाँ डाल पर बैठी थीं। अब काम कुछ था नहीं। बहुत दिनों की मेहनत बेकार जा चुकी थी। जहाँ कभी छत्ता था, वहाँ अब आग से जले काठ की कलौंच-सी बाकी थी।

अचानक एक की निगाह रोटी पर पड़ी, तो उसने कहा, 'बहन मक्खी गुनगुन ! देख तो जरा। लोग तो कहते हैं यह संत है, सबसे कहता है, सब कुछ दान करो, तप करो, पर यह तो शायद शहद खा रहा है, जो हमने इतनी मेहनत से इकट्ठा किया था। चल इसे काटकर इसके ढोंग की सजा तो दे आएँ।'

दूसरी मक्खी ने कहा, 'नहीं बहन तुनतुन, अब पापी और झूठे के हाथ में जाकर वह शहद नहीं रहा। उसमें फूलों की मिठास नहीं रही। मनुष्य के स्वार्थ ने उसे हमारे लिए विष बना दिया है, हम शहद फूलों की प्यालियों से समेटती हैं, ऐसी-वैसी जगह से नहीं। एक कुत्ता वहाँ बैठा-बैठा संत की रोटी को देख रहा था। संत तो पेट-पूजा के नए प्रयोग में व्यस्त थे; वे तो नहीं सुन पाए, मगर कुत्ते ने सुन लिया। सोचने लगा कि आखिर यह क्या चीज़ है जिसके पीछे लालच आया तो कुत्ता खड़ा होकर पूँछ हिलाने लगा। संत ठहरे दयालु ! एक टुकड़ा उसकी ओर भी फेंका, शहद लगी रोटी देख कुत्ता झपटा, किंतु शीघ्र ही उसने उगल दिया उसे। शहद उसे बहुत बुरा लगा। और उसने सोचा- आखिर आदमी ने इतनी बुरी चीज़ की चोरी क्यों की? इसे खाने से तो उबकाई आती है ।

जब कुत्ते को चैन न पड़ा तो उसने धीरे से कुनमुनाकर कहा, 'बहन तुनतुन ! क्या फूलों में इतनी उबकाई लाने वाली चीज़ होती है, जो तुम बेवकूफों की तरह इकट्ठा किया करती हो, और क्या इसीकी रक्षा करने के लिए तुम अपना विषैला डंक सबको चुभाती फिरती हो?'

गुनगुन मक्खी हँसी और बोली, 'अरे भैया कुत्ते ! तू इसकी असलियत क्या जाने ! यह शहद कैसी चीज़ है, इसे तू क्या समझे ! तू जिस आदमी की जूठन खाता है, वही आदमी हमारी इस उगलन को खाने के लिए चोरी करता है और संत-महात्मा इस थूक को खाकर दानी और त्यागी होने का ढोंग रचते हैं। तू तो सिर्फ रोटी चबा ! तू शहद को क्या समझ सकता है।'

कुत्ता मन ही मन आदमी के बारे में चक्कर में पड़ गया और सोचने लगा -- लोग कहते हैं कि मैं जूठा खाता हूँ, तो क्या यह आदमी भी जूठन खाता है?'

थोड़ी देर में संत खा-पी चुके और उपदेश सुनने वाले इकट्ठे हो गए। तब संत ने कहा, 'अपना सब कुछ दान कर दो। मक्खियों की तरह सुंदरता से सत्य निकालना सीखो, जैसे वे फूलों से शहद निकालती हैं। और

मनुष्य के समाज को मिठास दो ! और कुत्ते की तरह निर्लोभी रहो, जो मिठास होने पर भी शहद नहीं चाहता !'

इस प्रवचन को सुनकर मक्खियाँ मनुष्य का गुणगान करती हुई उड़ गईं और कुत्ता पहले से भी अधिक मनुष्य का भक्त हो गया। तब दूसरी चींटी ने पहली चींटी से कहा, 'बचकर चल ! संत को इतना समय नहीं कि हमें देखकर बचकर निकले। सारा सत्य यहीं धरा रह जाएगा।'

उस दिन से लोक में यह प्रचलित हो गया कि मक्खियाँ इसीलिए बनी हैं कि आदमी के लिए शहद इकट्ठा किया करें और कुत्ता इसलिए पैदा हुआ है कि आदमी की सेवा किया करे। चोरी और दासता से मनुष्य का अहं संतुष्ट होकर नए-नए संतों और पैगम्बरों को धरती पर भेजने लगा और मनुष्य, जिसने कि आदर्शों के मूल में केवल अपना स्वार्थ सिद्ध किया था, किसी भी प्रकार संतुष्ट नहीं हो सका। उसे दुःखी देखकर एक बार मक्खियों ने निर्णय किया कि अब की बार जब वह चोरी करने आए तो उसे रोक दिया जाए, क्योंकि चोरी को ही न्यायसंगत समझने के कारण वह घबरा रहा है, और कुत्ते ने सोचा कि मेरी दासता ने इस आदमी को अहंकार में डाल दिया है, अतः मुझे इसका यह दंभ भी मिटाना चाहिए। चुनांचे जब आदमी छत्ता तोड़ने गया तो मक्खियों ने काट लिया और कुत्ते ने बगावत कर दी। दोनों का ध्येय था कि अब कोई इनमें दार्शनिक संत बनकर नई मूर्खता प्रकट न करे। किंतु हुआ यह कि एक नया व्यक्ति खड़ा हुआ और उसने मक्खियों को उड़वा दिया और कुत्ते की पिटाई कराई और कहा, 'जिसमें डंक हो, उसे निकाल दो क्योंकि वह मिठास के पास जाने से रोकता है, और जो बगावत करे उसे दंड दो, क्योंकि बगावत से नियम बिगड़ता है। जो कुछ है, हमारे लिए ही तो है।'

मक्खी और कुत्ता बड़े उदास गए। उन्होंने आसमान के सितारे से शिकायत की। सितारा बहुत बुड्ढा था। उसने हँसकर कहा, 'बच्चो ! यह आदमी बहुत बड़ा मूर्ख है। जब यह इस धरती पर ही नहीं था, मैं तो तब से ही इस धरती को जानता हूँ। पर यह अब समझता है कि सब कुछ इसीके लिए है।'

'कब से देख रहे हो तुम ? क्या हम इसीके लिए बने हैं ?' कुत्ते और मक्खी ने पूछा।

'बहुत दिनों से।' सितारे ने हँसकर कहा। 'तुम इसके लिए नहीं बने, तुम बने हो मेरे सामने। और मैं तुम्हें हमेशा देखा करूँगा।'

इसी समय बुड्ढा सितारा हिल उठा और आकाश में फिसलकर गिर पड़ा। आकाश में आग-सी लगी और फिर सब शांत हो गया। मक्खी और कुत्ते ने एक दूसरे की ओर देखा और कहा, 'सितारा झूठ कहता था। आदमी ठीक कहता है।' और दोनों फिर उसीकी सेवा में लग गए। तब दूसरी चींटी ने पहली चींटी से कहा, 'सत्य समझो।'

पहली चींटी ने मुस्कराकर कहा, 'समझ गई। जो तूने उस दिन कहा था, वही अंतिम सत्य है - बिल और दाना।'

उसके बाद कोई कुछ नहीं बोला ।☆

*(साभार : पाँच गधे, रांगेय राघव)*

यह खून ही है जो स्वतंत्रता की कीमत चुका सकता है- सुभाष चंद्र बोस

# केंद्र सभा के कार्यकारिणी समिति की बैठक : 29.07.2023 : चित्र दीर्घा

केंद्र सभा के कार्यकारिणी समिति की बैठक : 29.07.2023 : चित्र दीर्घा

# केंद्र सभा के कार्यकारिणी समिति की बैठक : 29.07.2023 : चित्र दीर्घा

## हार्दिक अभिनंदन!

हिंदीतर प्रदेश में हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए बिहार राज्य सरकार ने दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा-आंध्र प्रदेश एवं तेलंगाना को 'विद्याकर कवि पुरस्कार' से सम्मानित किया। बिहार के मुख्यमंत्री माननीय नीतीश कुमार के हाथों यह पुरस्कार आंध्र सभा की प्रतिनिधि के रूप में सचिव (प्रभारी) ए. जानकी ने स्वीकार किया।

आलेख

# रांगेय राघव की कहानियों की प्रासंगिकता : वर्ष 2023

- सुपर्णा मुखर्जी
हिंदी प्राध्यापिका, भाषा विभाग, भवन्स विवेकानंद कॉलेज,
डिफेन्स कॉलोनी, सैनिकपुरी, सिकंदराबाद - 500094

तमिल भाषी तिरुमल्ले नंबाकम वीर राघव आचार्य यानि रांगेय राघव हिंदी साहित्य के विलक्षण कथाकार और कवि रहे। 17 जनवरी, 1923 आगरा, उत्तर प्रदेश में उनका जन्म हुआ और 12 सितंबर, 1962 में उनकी मृत्यु हुई। अर्थात, 39 साल वे लौकिक संसार में रहे लेकिन देखिए उनकी रचनाओं ने आज 2023 यानि 100 उनकी आयु सीमा को बढ़ा दिया है। ऐसा नहीं कि राघव के परिवारवाले साहित्यिक वातावरण से संबंध रखते थे। उनकी माताजी कन्नड़ और पिता तमिल थे। उनके पूर्वज बालाजी मंदिर के पुजारियों में से थे। किंतु राजगुरु होकर इनके पिता भरतपुर के बैर कस्बे में आकर बस गए थे। जिस कारण से राघव ने अपने बाल्यकाल से ही विविध संस्कृति, विविध परिवेश, विविध खानपान और जीवनशैली को बहुत निकट से देखा था और उन्होंने अपने अनुभवों को केवल अपनी रचनाओं में उकेरा नहीं था बल्कि पाठक को सोचने के लिए मजबूर भी किया था। 100 से अधिक कहानियों के रचयिता राघव का कहानी के संबंध में विचार था कि, 'कहानी करुणा नहीं जगाती है, बल्कि करुणा के माध्यम से विवेक जगाती है। वह विभत्स्ता जो सुंदरता के साथ चलती है, उसका उद्देश्य अंत में जाकर पूरा हो जाता है'। (सौजन्य गूगल)।

उनका यह विचार केवल विचार नहीं था बल्कि उनकी संपूर्ण कहानियों में उनके इस विचारधारा की आभा को हम देख सकते हैं। 'गदल' कहानी तो उनकी बहुर्चाचित कहानी रही है। आज राघव के 100 साल की जन्मशती के उपलक्ष्य में तो इस कहानी की प्रासंगिकता और भी अधिक बढ़ जाती है। 'गदल' केवल स्त्री विमर्श को लेकर चलनेवाली कहानी नहीं है बल्कि आज की युवा पीढ़ी जो लिव-इन-रिलेशनशिप को आधुनिकता की चरम पराकाष्ठा मानकर 48 टुकड़ों में प्रेमिका को काट रहा है तो प्रेमिका भी अंधप्रेम में पागल कटने को तैयार भी हैं तो उस समय गदल का गुन्ना को यह कहना कि, 'तू रोकेगा? अरे, मेरे खास पेट के जाए मुझे रोक न पाए। अब क्या है? जिसे नीचा दिखाना चाहती थी, वही न रहा और तू मुझे रोकनेवाला है कौन? अपने मन से आई थी, रहूँगी, नहीं रहूँगी, कौन तूने मेरा मोल दिया है! इतना बोल तो भी लिया। तू जो होता मेरे उस घर में तो, तो जीभ कढ़वा लेती तेरी!'(रांगेय राघव, प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ.149)।

तो क्या हुआ गदल विधवा थी? तो क्या हुआ जो वह बिना ब्याह के मौनी के घर जा बैठी थी? सबसे पहले वह इंसान थी और परिस्थिति चाहे कुछ भी हो इंसान को उसकी चेतना के साथ समझौता नहीं करना चाहिए। रांगेय राघव ने 'मानव चेतना' को सर्वोपरि स्थान प्रदान किया। आज की युवा पीढ़ी में कहीं न कहीं इस चेतना का अभाव है। तभी तो गदल जैसी परिश्रमी माँ को अपमानित करने का साहस उसके बेटे दिखा पाते हैं। निहाल जो

स्वयं अनुशासनहीन है, असभ्य है वह माँ से कहता है, 'सुन ले परमेसुरी, जगहँसाई हो रही है। खारियों की तो तूने नाक कटाकर छोड़ी'। (वही, पृ.140)

आज यह केवल भारत की नहीं संपूर्ण विश्व की कहानी है जहाँ बच्चे माता-पिता को अनुशासन सिखाने की धृष्टता, उन्हें बुढ़ापे में अलग-थलग छोड़ देने का अमानवीय कार्य, भावनात्मक तथा कई बार शारीरिक उत्पीड़न जैसे कार्य एक बार नहीं बल्कि बारम्बार करते हैं। विश्व मदर्स डे, फादर्स डे तक सिकुड़ गया है जबकि हर रोज़ ही माता-पिता का दिन होता है या फिर यूँ कहे कि संबंधों का दिन होता है, परंतु आज कहाँ है संबंधों में वह पवित्रता, वह ईमानदारी जो राघव की गदल में था। वह बेबाक डोडी से कहती है, 'कायर ! भैया तेरा मरा, कारज किया बेटे ने और फिर जब सब हो गया तब तू मुझे - अरे कौन किसकी परवा करता है।' (वही, पृ.142)

रांगेय राघव के पात्र केवल हमेशा संबंधों को लेकर ईमानदार रहे यह कहना गलत होगा क्योंकि रांगेय राघव के पात्र किसी प्रकार के आदर्शात्मक उदाहरण स्थापित करने के स्थान पर यथार्थपरक विषयों को रेखांकित करने में अधिक सक्षम दिखाई पड़ते हैं। जैसे-स्त्री मातृस्वरूपा है और साथ ही मायास्वरूपा भी। स्त्री घर जोड़ सकती है तो घर तोड़ना भी उसके बाएँ हाथ का ही काम है। जैसे 'पंच परमेश्वर' कहानी की नायिका फूलो। पेट की भूख, शरीर की भूख अच्छे-अच्छों की नियत डगमगा देती है तो फिर एक गँवार और जवान औरत भला कब तक, क्यों और कैसे सहती शरीर और पेट की भूख की मार को? उसने पति का घर छोड़ दिया और जेठ को 'भरतार' मानकर उसके घर बैठ गई और पंचों के सामने भी अपने को पतिव्रता साबित करने के बजाय उसने अपनी माँग को ही दोहराया, 'उसने भरी पंचायत में आगे बढ़कर कहा-चौधरी भगवान हैं। पंच परमेसुर हैं। लुगाई मरद की है, मगर जो मरद ही न हो, उसकी लुगाई नहीं है।' (वही, पृ.29)

पंच पकवान न मिले, दो वक़्त की रोटी तो मिलनी ही चाहिए। सुख-सम्पदा न मिले, थोड़ा स्नेह-प्रेम, अपनापन तो मिलना ही चाहिए। केवल उपदेशों के सहारे तो जीवन नहीं चल सकता। 'घिसटता कंबल' कहानी के पात्र विपिन का अपनी पत्नी रागिनी से यह कहना सोचने पर बाध्य करता है, 'तुम समझती हो, धन ही हमारे सुखों का मोल है? नहीं रागिनी ! प्रेम ही हमारे जीवन की सांत्वना है, एक बड़ा भारी आधार है। यदि मैं इस दुखी संसार में तुमसे छूट जाऊँ तो तुम समझती हो मैं यह अपमान का जीवन बिता सकूँगा?' (वही, पृ.34)

दाम्पत्य जीवन की सफलता और सम्मान ऐसे ही प्रेम भरे क्षणों पर निर्भर करता है। रांगेय राघव को अपने व्यक्तिगत जीवन के द्वारा इस बात का अनुभव था। उनकी अपनी पत्नी श्रीमती सुलोचना के साथ मधुर संबंध था। वे अपनी पत्नी से 13 साल बड़े थे लेकिन आयु सीमा कभी उनके प्रेम जीवन को प्रभावित नहीं कर सका। वे पति होने के साथ-साथ मार्गदर्शक भी रहें और मित्र भी। उनकी कहानियों में स्पष्ट रूप में दाम्पत्य जीवन के इस महत्वपूर्ण गठजोड़ को देखा जा सकता है। 'प्रवासी' कहानी की नायिका कोमल और गोपालन के वार्तालाप को दाम्पत्य जीवन के प्रेम की चरम पराकाष्ठा के रूप में देखना रोमांचक होगा। कोमल कहती गई- 'जानते हो, मेरे

स्वामी शराब पीने लग गए थे?/ 'जानता हूँ! वह पापी था!' गर्व से उसने सिर उठाकर कहा। /'हूँ!' कोमल हँस दी-'पापी कौन है, यह तो ईश्वर ही जानता है। मैं तो केवल यह जानती हूँ कि वह मेरे स्वामी थे।' (वही, पृ.57)।

आज जब छोटी-छोटी बातों को अहं का विषय बनाकर विवाह विच्छेद हो जाना एक आम बात हो गई है, वहाँ रांगेय राघव की नायिका अपने पति के दुर्गुण को छिपाती नहीं है लेकिन केवल दुर्गुण के कारण पति नामक व्यक्ति विशेष से विच्छेद या फिर उसको अपमानित करना भी कोमल को पसंद नहीं। बात तो सही यह भी है कि प्रत्येक व्यक्ति में सुगुण और दुर्गुण दोनों होते हैं। व्यक्ति को महत्व देंगे तो उसके सुगुण से कुछ अवश्य सीखेंगे और दुर्गुण को उसके जीवन से दूर करने में उसकी सहायता भी कर सकेंगे। रांगेय राघव के चरित्रों की भावनात्मक प्रतिबद्धता ही उन्हें आज उनके जन्मशती के वर्ष में दूसरे लेखकों से अब भी अलग श्रेणी में खड़ा करने में सक्षम है।

रांगेय राघव की कहानियों में जहाँ एक तरफ संबंधों की चर्चा है, वहीं बहुतायत स्थानों में उन्होंने धार्मिक संस्कारों को लेकर प्रचलित संकीर्ण मानसिकता तथा विचारधारा पर भी व्यंग्य किया है। वे स्वयं ब्राह्मण थे, धार्मिक परिवार के साथ उनका संबंध था लेकिन उनमें धार्मिक कट्टरता की भावना लेशमात्र भी नहीं थी। 'रोने का मोल' कहानी की प्रस्तुत पंक्तियों को देखिए, 'दूसरे दिन पंडित जी ने चुंगी में अर्जी दे दी और कुत्तों को गोली डालने भंगी आ गए। जब कोई कुत्ता न फँसा तो पंडित जी स्वयं कुत्तों के लिए बाहर निकल आए। बाहर आते ही भंगियों ने घेर लिया। आज उन्हें इसकी भी परवाह नहीं थी। ब्राह्मण स्वार्थ के सामने धर्म को अपने अनुकूल बना लेता है।' (वही, पृ.39)। अब अपने आसपास के समाज को देखिए - क्या पंडित जी जैसे लोग नहीं हैं आपके चारों तरफ! कहने को तो हम, सभ्य वैज्ञानिक युग में जी रहें हैं लेकिन आज भी आरक्षण एक बहुत बड़ा मुद्दा है, ऑनर किलिंग के मुद्दे नग्न सच्चाई है। इन सबके बीच में रांगेय राघव के पात्र 100 साल की यात्रा पूर्ण प्रासंगिकता के साथ पूर्ण कर रहें हैं।

धर्म का असली काम तो मनुष्य को शांति प्रदान करना होता है। लेकिन, वही धर्म जब कुप्रथाओं के जाल में फँस जाता है तब कैसे मनुष्य ईश्वर तो क्या, मानवता से भी दूर हो जाता है। 'प्रवासी' कहानी की नायिका कोमल का प्रस्तुत कथन उक्त सच्चाई को ही व्यक्त कर रहा है। कोमल कहती है, 'तुम्हारे धर्म में पिता पुत्री का शत्रु होकर भी धार्मिक ही रहता है! लेकिन मैं भी सिर नहीं झुकाऊँगी। देखते हो, जो गहने पहने हूँ! बेच दूँगी इन्हें। पति का क्रिया-कर्म तो करना ही होगा। नहीं मानती, न सही, न जानती, न सही! किंतु मनुष्य मरकर प्रेत नहीं होता, यह भी तो नहीं जानती! पुरखे जो कुछ करते आए हैं, उसे कर देना भी तो ज़रूरी है, आयंगार! (वही, पृ.58)। आज की युवा पीढ़ी और उसके परिवार की दशा भी तो ऐसी ही है। कितने लोगों को सही मंत्रोच्चार आता है? कितने लोगों को मंत्रों का अर्थ पता होता है? कितने लोग अपने धर्म के सभी नियमों से परिचित हैं? इसका उत्तर सौ प्रतिशत सकारात्मक नहीं है। लेकिन जन्मवश सभी के अपने धर्म हैं भले ही कर्म उस धर्म के साथ मेल न खाते हो। इसी कारण से रांगेय राघव आज भी प्रासंगिक हैं। ☆

आलेख

# रांगेय राघव की कहानियों में जनजीवन

- शकीला बेगम मुस्ताफा
असिस्टेंट प्रोफेसर, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान,
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, डी.सी.कांपउंड, धारवाड-580001

रांगेय राघव का नाम साहित्यकारों की अग्रिम पंक्ति में समादृत है। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से हिंदी साहित्य जगत की महती सेवा की है। उनका जीवन और साहित्य दूसरों के लिए अनुकरणीय है। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने साहित्य की समस्त विधाओं में अपनी लेखनी चलाई।

रांगेय राघव ने अपना लेखन कार्य बैर, शांतिनिकेतन तथा जयपुर में किया। साहित्य लेखन का प्रारंभ बैर गाँव से हुआ क्योंकि राघव जी वहाँ प्राकृतिक वातावरण और उस वातावरण की सहजता, सौम्यता, सादगी से प्रेरित होते थे। कटु सत्य कहने में वे हिचकिचाते नहीं थे। इनके इस स्वभाव का प्रभाव उनके साहित्य के पात्रों पर भी पड़ा। यही मूल कारण है कि इनके अधिकांश साहित्य अतियथार्थवादी हो गए हैं। वे योजनाबद्ध ढंग से अध्ययन करते थे। उनका अध्ययन व्यापक और विस्तृत होता था और योजनाबद्ध होकर साहित्य सृजन किया करते थे। सृजनात्मक साहित्य लिखने वालों में योजना बनाकर लिखने वाले साहित्यकार बहुत कम मिलते हैं, क्योंकि योजनाबद्ध साहित्य का सृजन गहन अध्ययन के बाद ही संभव होता है। रांगेय राघव सदा प्रसन्न रहने वाले तथा विशाल हृदय वाले व्यक्ति थे। जन-सामान्य से अत्यधिक लगाव होने के कारण वे उनके बीच उसी माहौल में अपना व्यक्तित्व ढालते रहे। कमलेश ने लिखा है कि 'प्रगतिशील लेखक संघ ने उनकी जन्मजात मेधा पर धार रख दी थी, लेकिन वे संघ की खानापूर्ति से संतुष्ट नहीं थे। वे जीवन व जगत को स्वयं देखने के आदी थे।'

1942-1951 की घटनाएँ - विश्वयुद्ध की छाया, बंगाल का अकाल, भारत छोड़ो आंदोलन, भारत-पाक विभाजन, हिंदू-मुस्लिम दंगे, भारतीय स्वाधीनता, साम्यवादी दलों पर पाबंदी, महात्मा गांधी की हत्या, नेहरु युग की शुरुआत आदि से रांगेय राघव प्रभावित हुए। इसी आंदोलित वातावरण में रांगेय राघव कहानी लेखन के मैदान में उतरे। ज़ाहिर है कि उनकी कहानियाँ हमारे समक्ष इतिहास के उस कालखंड का तिलिस्मी दरवाजा खोलती हैं। उस काल की शायद ही कोई बड़ी घटना हो जिसकी अनुगूँज रांगेय राघव की कहानियों में न मिले। उक्त परिस्थितियों के फलस्वरूप देश में महँगाई, बेरोजगारी, आर्थिक शोषण, कालाबाजारी, अभाव, दरिद्रता, दमन और भ्रष्टाचार का बोल-बाला था जिनका सिलसिलेवार ब्यौरा इनकी कहानियों में मिलता है। 'गदल' और 'पंच परमेश्वर' जैसी कालजयी कहानियाँ आज भी जन-जन की जीभ पर बसी हुई हैं तो इसका मूल कारण कथाकार रांगेय राघव का मौलिक जन सरोकार और गहन जीवन दृष्टि ही है। अपने समय और समाज के प्रति संपूर्ण रूप से जिम्मेदार कथाकार हैं रांगेय राघव। रांगेय राघव जिन दिनों रचनाशील थे, उस समय अथवा उसके आस-पास सक्रिय अन्य रचनाकारों में प्रेमचंद, जैनेंद्र, यशपाल, रामवृक्ष बेनीपुरी, नागार्जुन, अमृता राय और ओंकार शरद आदि के नाम

महत्त्वपूर्ण हैं। अपने कथ्य की विभिन्नता, वैचारिक मतभेदों और अपनी शैलीगत विशिष्टताओं के कारण रांगेय राघव अपने समकालीन के मध्य एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनकी कहानियों का सामान्य परिवेश भी इन्हें एक अलग पहचान या रंग देता है। इनमें भौगोलिक दृष्टि से राजस्थान के आसपास का क्षेत्र और स्थानीय समाज के रीति-रिवाज तथा उनके शब्द और उनकी समस्याएँ अर्थात एक पूरा आंचलिक परिवेश अपनी तमाम खूबियों और खामियों के साथ उभरता है। उनके उपन्यासों की तरह उनकी कहानियों और उनके पात्रों में जबरदस्त वैविध्य है। इन पात्रों की बस्ती पर जब हम नजर दौड़ाते हैं तो जान पड़ता है कि वह एक लघु भारत है। सचमुच दक्षिण के द्रविड़ांचल से लेकर उत्तर के ब्रजमंडल तक के जनजीवन को उन्होंने अपनी कहानियों का विषय बनाया है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के फलस्वरूप विश्वभर में महँगाई, बेरोजगारी, आर्थिक शोषण, कालाबाजारी, दरिद्रता, दमन और भ्रष्टाचार का वातावरण था। इनके प्रभाव से भारत जैसे गरीब अविकसित और गुलाम देश का बचना असंभव था। देश की इस दयनीय दशा की ओर तत्कालीन साहित्यकारों का ध्यानाकर्षण स्वाभाविक तौर पर हुआ। इनमें भी रांगेय राघव अग्रणी थे। इनकी कहानियों में सर्वत्र इन परिस्थितियों के विवरण मिलते हैं। 'गदल' को रांगेय राघव के समालोचक उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी मानते हैं, जो अपने रूप और अपनी अंतर्वस्तु में महान कहानीकार प्रेमचंद की इसी नाम की एक प्रसिद्ध कहानी के साथ प्रतिद्वंद्विता करती है। इस कहानी में एक युवा स्त्री पति को छोड़कर अपने जेठ के घर जा बैठती है। अर्थात उसे ही अपना नया पति स्वीकार कर लेती है। पीड़ित पूर्व पति के अनुरोध पर बुलाई गई पंचायत में बिरादरी का सरपंच बड़े भाई से रिश्वत खाकर उसी के पक्ष में फैसला देता है। और तो और उस भरी सभा में वह स्त्री अपने पूर्व पति को नामर्द भी ठहरा देती है। वह कहती है कि 'चौधरी भगवान है, पंच परमेसुर है। लुगाई मर्द की है, मगर जो मर्द ही न हो, उसकी कोई लुगाई नहीं है।' और उसका यह बयान ही फैसला बन जाता है। 'पंच परमेश्वर' निम्नवर्गीय शहरी जीवन में स्त्री-पुरुष संबंधों और पुरानी पंच आधारित कबिलाई न्याय व्यवस्था की सड़ांध पर प्रहार करने वाली कहानी है। इस कहानी में रांगेय राघव पंच परमेश्वर का यथार्थ रूप हमारे सामने लाते हैं।

'देवदासी' और 'प्रवासी' शीर्षक कहानियाँ दक्षिण भारत की पृष्ठभूमि पर आधारित हैं। दोनों में रूढ़ सामाजिक मान्यताओं की बलिवेदी पर नारी के बलिदान की कथा कही गई है। इनके घटना काल में बहुत अंतराल होने के बावजूद देखने लायक बात यह है कि इतना समय बीत जाने के बाद भी समाज की मूल परिस्थितियाँ और व्यक्ति की सोच लगभग जस की तस है। इन दोनों ही कहानियों की पृष्ठभूमि में मंदिर और पुजारी वर्ग है। 'जात और पेशा' कहानी हमें तोलस्तोय की प्रसिद्ध कहानी 'दो पड़ोसियाँ' की याद दिलाती है, लेकिन इसका अंत आदर्शवाद नहीं, यथार्थवाद है। 'ऊँट की करवट' में समाज और प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार की चर्चा की गई है। 'नई जिंदगी के लिए' कहानी में पुरुष समाज में पुत्र प्राप्त की आकांक्षा एवं इसके कारण होने वाले अनर्थ को दर्शाया गया है। 'घिसटता कंबल' निम्नमध्यवर्गीय नौकरीपेशा एकल परिवार के युवा दंपति की कहानी है जिसका केंद्र दिल्ली शहर है। 'पेड़' एक अत्यंत मार्मिक और दुखांत कहानी है जिसमें पुरानी आदर्शवादी मान्यताओं और

जीवन की कठोर वास्तविकताओं के बीच पर्याप्त अंतरविरोध और त्रासदी को दर्शाया गया है।

'भय' कहानी की नायिका रजनी का ममिया ससुर कुंदन खेत में उसके साथ बलात्कार करता है जिसको उसकी सास देख लेती है। सास द्वारा शोर मचाने पर मारपीट तथा फौजदारी तक बात पहुँच जाती है। लेकिन इस कांड की पीड़िता का मंतव्य ध्यान देने योग्य है। उसकी सास धोपू उसे कुलच्छनी कह कर उसकी भर्त्सना करती है, तब वह जवाब देती है 'पर मैं क्या करती? वे तीन थे, दो ने मुझे जबरदस्ती पकड़कर मेरे मुँह में कपड़ा ठूँस दिया, मैं चिल्ला भी नहीं सकी। और तुमने देखा तो हल्ला क्यों किया? जब बचाने की ताकत न थी तो बेआबरू करके ही तुझे क्या मिल गया।' अपने साथ हुई जबरदस्ती के प्रति उस स्त्री का कैसा विस्मयकारी दृष्टिकोण है? लेकिन जब हम आयु, दान, मान, अपमान आदि को गोपनीय रखने की नैतिकता में विश्वास करने वाले भारतीय सामाजिक परिवेश को ध्यान में लाते हैं तो रजनी का उक्त दृष्टिकोण हमें असंगत कम और युक्ति युक्त अधिक प्रतीत होता है।

'प्रवासी' शीर्षक कहानी गोपालन नामक एक दक्षिण भारतीय ब्राह्मण की कहानी है जो पुजारी बनकर उत्तर भारत में रह रहा है। पूरी कहानी फ्लैशबैक शैली में लिखी गई है। इसमें एक पढ़ी-लिखी विधवा ब्राह्मणी युवती के संघर्ष और युवा गोपालन द्वारा दिए गए निस्वार्थ सहयोग, समाज में इन संबंधों के फलस्वरूप फैली बदनामी और तत्पश्चात ब्राह्मणी के अनुरोध पर गोपालन द्वारा उस प्रदेश से किया गया निष्क्रमण आदि का मार्मिक चित्रण किया गया है। भारतीय परिवेश में नारी की व्यथा और उसके मानसिक एवं शारीरिक द्वंद्व की अभिव्यक्ति इस कहानी में है।

'नारी का विक्षोभ' कहानी का घटना क्षेत्र लखनऊ और उसके आसपास का क्षेत्र है। इसमें एक सुंदर शिक्षित और नए विचारों वाली लड़की सविता का संघर्ष चित्रित हुआ है। उसका पति उसके साथ ही कॉलेज में पढ़ता था और उसका दिवाना था। शादी के पहले अपने को बिल्कुल आजाद खयाल और आधुनिक जाहिर करनेवाला शादी के बाद वह सविता पर हर तरह की बंदिशें लगाता है। यहाँ तक कि उसके साथ मारपीट पर उतारू हो जाता है। लेकिन सविता घुटने टेकने की बजाए प्रतीकार करने का निश्चय करती है। यह कहानी उसके संकल्प और संघर्ष को उजागर करती है। यह कहानी वस्तुतः भारत की आधुनिक स्त्री या एक नई नारी की भाव-वाहिका है जो अपनी दादी और माओं की तरह स्वीकार और सहनशीलता के पिटे पिटाए रास्तों पर चलने के लिए तैयार नहीं है।

रांगेय राघव प्रगतिवादी दौर के रचनाकार थे, लेकिन इसके बावजूद वे साहित्य को सिर्फ सामयिकता के घेरे में बंद कर देने के हिमायती नहीं थे। शायद यही कारण है कि एक यथार्थवादी रचनाकार के रूप में रांगेय राघव सिर्फ समस्याओं को उठाते हैं। आदर्शोन्मुखी यथार्थवादियों की तरह उनका कोई समाधान प्रस्तुत नहीं करते। इसके पीछे कहीं न कहीं यह विचार जरूर कार्यरत है कि समस्याएँ ही अपने मूल रूप में शाश्वत होती हैं। समाधान तो युगीन होते हैं और उनकी स्वीकार्यता अथवा अस्वीकार्यता समय के साथ-साथ बदलती रहती है। ☆

आलेख

# अकाल के संत्रास से पीड़ित मनुष्य की वेदना : 'अदम्य जीवन'

- बी. संतोषी कुमारी
असिस्टेंट प्रोफेसर, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान,
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास - 600 017

हिंदी रिपोर्ताज साहित्य में रांगेय राघव की रचना 'तूफानों के बीच' का अत्यधिक महत्व है। रिपोर्ताज विधा की दृष्टि से हिंदी का यह पहला सशक्त प्रयास है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान 1942 में बंगाल में भयंकार अकाल पड़ा। बंगाल की शस्य श्यामला भूमि भूख, रोग और मृत्यु से, संत्रास से कराह उठी; लेकिन यह अकाल प्राकृतिक विपदा भर नहीं था, साम्राज्यवादी ताकतों की शोषणपरक नीतियों का परिणाम था। 'तूफानों के बीच' की भूमिका में रांगेय राघव लिखते हैं - "बंगाल का अकाल मानवता के इतिहास का बहुत बड़ा कलंक है। शायद क्लियापैट्रा भी धन के वैभव और साम्राज्य की लिप्सा में अपने गुलामों को इतना भीषण दुख नहीं दे सकी जितना आज एक साम्राज्य और अपने ही देश के पूँजीवाद ने बंगाल के करोड़ों आदमी, औरतों और बच्चों को भूखा मार दिया है।" बंगाल के इस भीषण अकाल से लड़ने के लिए अपना कर्तव्य समझकर डॉ. कूंटे के नेतृत्व में एक मेडिकल जत्था आगरा से बंगाल गया। डॉ. रांगेय राघव एक लेखक के रूप में इस जत्थे के साथ गए। वहाँ लेखक ने जो कुछ देखा उसी का मार्मिक विवरण है 'तूफानों के बीच'।

रांगेय राघव जनचेतना के सजग रचनाकार हैं। मनुष्य और मनुष्यत्व उनके चिंतन के केंद्र में है। मानवीय मूल्यों के पक्षधर लेखक के रूप में मनुष्य की सार्थकता उसके समाज संवेद्य होने में ही मानते हैं। इसी विचारधारा को प्रामाणित करने वाली कृति है 'तूफानों के बीच'। बंगाल का अकाल, लेखक के लिए मात्र घटना और आंकडों तक सीमित नहीं था। उसने उन लोगों के साथ उस विभीषिका के संत्रास और पीड़ा को झेला था। वह द्रष्टा भी था और भोक्ता भी। उनकी पीड़ा का अनुभव करते हुए उसने लिखा - "उनके चेहरों पर जैसे दुख की खुली किताब थी जो भी इंसानियत का थोड़ा बहुत ज्ञान रखता है वह आसानी से पढ़ सकता है उसको।" रांगेय राघव में निश्चय ही वह इंसानियत थी। 'तूफानों के बीच' के रचनाकार में वह अनुभूति है जो भूख की पीड़ा का अनुभव कर सकती है। उनमें वह वेदना है जो जीवन को देखने की एक नई दृष्टि देती है। उनमें वह विवेक है जो भूख, रोग और मृत्यु के बीच का ऐसा शब्द-चित्र खींचता है जो करुणा एवं यथार्थ का जीवंत दस्तावेज बन गया है।

'तूफानों के बीच' अकाल के उस यथार्थ का रूप प्रस्तुत करता है जहाँ मनुष्य के जीवन का एकमात्र लक्ष्य मुट्ठी भर अनाज है। उसके समक्ष सब कुछ असंगत हो जाता है - रागात्मक संबंध, नैतिक मान्यताएँ और मानवीय मूल्य। अस्तित्व का संकट। विपत्ति और निराशा के घने कुहरे से घिरकर भी मनुष्य का साहस अपराजेय है। वह संघर्ष करता है क्योंकि मानवता जीवित रहना चाहती है।

रांगेय राघव बंगाल के अकाल को भारतीय स्वाधीनता से जोड़कर देखते हैं। उनके अनुसार बंगाल की

भुखमरी तब तक समाप्त नहीं होगी जब तक हमारा देश आजाद नहीं होगा। इस भूख के विरुद्ध लड़कर जनता ने अपनी महान शक्ति का परिचय दिया है। लेखक ने पराधीनता और जनशक्ति को अपने युग की दो बड़ी सच्चाइयों के रूप में पहचाना है। लेखक का आक्रोश अंग्रेजी शासन और उसके संरक्षण में पल्लवित होते पूँजीपतियों के विरुद्ध है जिन्होंने व्यापक जनहित की उपेक्षा करते हुए चोर बाजारी और मुनाफाखोरी को प्रश्रय दिया। बंगाल का व्यापक नरसंहार अंग्रेजी शासन और ऐसे ही व्यापारियों की दुरभिसंधि का परिणाम था लेकिन क्रांति को चिरजीवी रखने के आकांक्षी जनमानस ने हार नहीं मानी। एक ओर वे नरपिशाच थे जो मनुष्य को मरते देखकर भी चुप थे। एक ओर रुपये की खन-खन में जो अपनी सारी सभ्यता और सारा मनुष्यत्व भूलकर राक्षसी आँख तरेरा करते थे तो दूसरी ओर ऐसे लोगों की संख्या भी कम न थी जो मनुष्य को मरने देना नहीं चाहते थे। एक विज्ञ लेखक की भाँति रांगेय राघव संपूर्ण परिप्रेक्ष्य को परत दर परत उघाड़ते चलते हैं। उनकी गहरी अंतर्दृष्टि इतिहास, परंपरा, समाज, व्यक्ति और मानवता सबको एकसूत्र में पिरोकर इस दुर्भिक्ष की विभीषिका के विरुद्ध मानवीय सामर्थ्य को शब्दबद्ध करती है। उनके एक-एक शब्द में लेखक की सच्चाई और ईमानदारी झलकती है। जनता की अपराजेय शक्ति में उनकी अटूट निष्ठा एक नया विश्वास पैदा करती है।

'तूफानों के बीच' में संकलित रिपोर्ताज 'अदम्य जीवन' शिद्धिरगंज नामक गाँव पर केंद्रित है। शिद्धिरगंज के माध्यम से वह बंगाल के दारुण यथार्थ का साक्षात्कार है। रांगेय राघव की मानवतावादी जीवन दृष्टि से अनुप्राणित 'अदम्य जीवन' को 'तूफानों के बीच' का प्रतिनिधि रिपोर्ताज कहा जा सकता है। बंगाल का अकाल, अकाल के कारण तथा अकालजन्य स्थितियों का मार्मिक चित्रांकन यहाँ अपनी समग्रता में उपस्थित है। भूख, रोग और मृत्यु का साम्राज्य और उनसे जूझता मनुष्य, स्थितियों की प्रतिकूलता के बावजूद मनुष्य की संघर्षमय चेतना को इस रिपोर्ताज में देखा जा सकता है।

'अदम्य जीवन' में चित्रित यथार्थ भयावह है। मृत्यु इस यथार्थ का सबसे बड़ा सच है। गाँव की सीमा शुरू होने से पूर्व कब्रें शुरू हो जाती हैं - "फोड़ों की तरह वे कब्रें जगह-जगह सूजी हुई सी दिखाई दे रही थीं।" एक-एक कब्र में दो-दो, तीन-तीन लाशें एक साथ दफनाई गईं। हर घर में मौत हुई थी। तीस चालीस लोग प्रतिदिन मृत्यु की भेंट चढ़ जाते। आंकडे भयावह थे। रहमत के घर में पच्चीस आदमी थे और उनमें से बीस मर गए थे। आदू मियां के घर में उन्नीस आदमी थे और सब मर गए थे। एक माँ के छह बच्चे अनाज और दवा के अभाव में उसकी आँखों के सामने चल बसे, अब्दुर्रहमान के घर में सोलह आदमी थे और उनकी मृत्यु त्रासदी झेलने को वह अकेला बचा था। इस पर भी किसी का रोना कराहना शेष नहीं बचा। जीवन के अभावों से जूझते आँखों की नमी सूख गई है। लेखक से उन्हें बस यही अपेक्षा है कि वह एक-एक कब्र से बात करे और जुलाहों के चूहों की तरह मरने की व्यथा-कथा सारे संसार को सुनाए। रांगेय राघव जैसे रचनाकार के लिए यह स्थिति मात्र घटना के विवरण तक ही सीमित नहीं रही है वरन् उनकी मानवीय चेतना मनुष्य को मृत्यु के संत्रास के इस तरह संघर्ष करता देख अत्यंत विफल हो गई। "आँखों के सामने एकबारगी उनमें सोए कंकाल तड़प उठे और नाच उठे

यातना से व्याकुल, भूख से तड़प तड़पकर मरते हुए प्राणियों के चित्र।"

एक तरफ मृत्यु का आतंकपूर्ण रूप है तो दूसरी ओर बीमारियों की भीषण यंत्रणा ने उत्साह की स्थिति को और भी दुस्सह बना दिया। मलेरिया, चेचक और चर्म रोग जैसी बीमारियों से जूझने का उनके पास कोई साधन नहीं। सहायता के नाम पर एक सरकारी दवाखाना अवश्य था, न कोई दवाइयाँ थीं, न मरीजों की खास तवज्जह और इस पर भी शासकीय मत की पुष्टि करता असिस्टेंट डॉक्टर 75 फीसदी आदमियों की हालत सुधारने का दावा करता है। जबकि रोग से जर्जर प्रतीक्षारत रोगी, उनकी बुझी आँखें, उभरी पसलियाँ और भयानक चर्म रोग एक अलग कहानी कहते हैं। स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा भेजी गई सहायता भी अत्यंत अपर्याप्त थी - डॉ. कूंटे के नेतृत्व में गया एक मेडिकल जत्था और फ्रेंडस एम्बुलेंस यूनिट द्वारा चलाया जा रहा एक लंगरखाना जहाँ सौ बच्चों में मात्र साढ़े सेर खिचड़ी बँटती थी। सब ओर अभाव और अभावजन्य भ्रष्टाचार का बोलबाला है। चावल किसी भी दाम नहीं मिलता। हर चीज पर मुनाफाखोरी और चोरबजारी हो रही है। अधिकांश लोग एक वक्त खाकर ही जीवित रह रहे हैं। तीन साढ़े तीन सौ लोग गाँव छोड़कर भाग आए। आम आदमी के लिए स्थिति और भी भयंकर हो जाती है। व्यवस्था पर से उसका विश्वास उठ गया - "गाँव कमेटी के यूनियन बोर्ड के मेम्बर सब चोर हैं चोर! कोई हमारी परवाह करता है? रिश्तेदारों को कार्ड होते हैं, अपनों को देते हैं, हमारी क्या पूछ...?"

बंगाल के इस भयानक अकाल ने जनमानस को झकझोर कर रख दिया। संकट की घड़ी में मनुष्य के भीतर छिपे पिशाच उजागर हुए। व्यक्ति के स्वार्थ और निज-पर की परिभाषाओं ने मानवता के अंत:सूत्र को एक झटके में तोड़ डाला। एक होकर व्यक्ति बड़ी से बड़ी ताकत से लड़ सकता है लेकिन एकता का अभाव उसे यूँ मरने के लिए छोड़ देता है। आत्मविश्लेषण के क्षणों में बंगाल के निवासियों ने भी यह अनुभव किया कि अकालजन्य स्थितियों में मानव की ऐसी दुर्दशा का बहुत बड़ा कारण एकता का न होना ही है -"हममें एका नहीं है, वर्ना क्या मजाल कि वह अपनी मनमानी करें।"

व्यक्ति का संकुचित स्वार्थ उसे अपने-अपने घेरे में बाँधे रहा और पेट की आग ने समस्त मूल्यों और नैतिकताओं को खोखला कर दिया। भूख की भीषणता के आगे समस्त रागात्मक संबंध सूख जाते हैं। मानवीय भावनाएँ कठोर हो जाती हैं। कब्रों के ढेर में एक बच्चा केवल अपने बाप की कब्र पहचानता है, यह बहुत बड़ी बात है। नहीं तो सब कब्रों पर पैर रख खड़े हो जाते, कितनी लाशें बिना कफन के दफनाई गई। "जहाँ जीवित के सम्मान की रक्षा के साधन पर्याप्त न थे वहाँ मृत लाशों का सम्मान कोई कैसे रखता! ऐसे समाज में औरत की अस्मत की उसके अस्तित्व से अधिक मूल्यवत्ता नहीं थी। सब लड़ रहे थे किसी तरह अपना जीवन बचाने को, ऐसे में नैतिकता के मानदंड़ों का ठहर पाना कठिन हो गया। शिद्धिरगंज की औरतों को यदि अपनी इज्जत बेचने पर उतारू होना पड़ा तो इसमें कितनी बुराई थी, नहीं कहा जा सकता। कुछ कहते हैं कि जैसे इतने मरे वे भी मर जातीं तो हर्ज ही क्या था? पर मैं सोचता हूँ, मर जाना क्या सहज है? कोई क्या अपने आप मर जाना चाहता है?" यथार्थ

के इस भयानक सच से लेखक सीधे साक्षात्कार करता है। इस अमानवीय यथार्थ की नग्नता को वह किसी आदर्श मूल्य की आढ़ से ढकना नहीं चाहते, बल्कि समस्त सामाजिक विसंगत मूल्यों के यथार्थ चित्रण द्वारा मानवीय संवेदना को झकझोर कर नवीन आर्थिक, सामाजिक मूल्य चिंतन की दिशा संधान के लिए प्रेरित करते हैं।

इस अकाल को मानव निर्मित ठहराते हुए लेखक उस व्याख्या पर प्रश्न चिह्न लगाता है जो साधनों को कुछ हाथों में केंद्रित करके व्यापक जनसमुदाय को इस भीषण संघर्ष की ओर ढकेल देती है। जहाँ वस्तु व्यक्ति के लिए न होकर पैसे के लिए हो जाती है। बंगाल के इस अकाल में भी पूँजीपति पैसे से सब कुछ नापता रहा और मनुष्य की भूख और नग्नता ने उसे सर्वनाश के कगार पर ला खड़ा किया - "मनुष्य को नंगा रखकर मनुष्य ने अपने मुनाफों के लिए बेशुमार कपड़ा तालों में बंद कर रखा जहाँ वस्तु मनुष्य के लिए न होकर पैसे के लिए थी।" कितना बड़ा व्यंग्य और विद्रूप था यह कि कपड़ा बनाने वाले स्वयं नंगे थे।

'अदम्य जीवन' केवल इस स्थिति का ब्यौरा भर नहीं है। जनता के प्रति लेखक की सच्ची सहानुभूति, संवेदनशील दृष्टि और व्यापक जनसमुदाय के प्रति उसकी पक्षधरता इस रिपोर्ताज को सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक व्यवस्था के विरुद्ध एक सक्रिय हस्तक्षेप का रूप देती है। व्यक्ति के संकुचित स्वार्थ पर टिकी इस व्यवस्था के विरुद्ध लेखक उस स्वार्थ की परिकल्पना करता है तो सबका स्वार्थ हो जिसमें सबका सुख और सबका हित निहित हो। चारों ओर व्याप्त अकाल के संत्रास से पीड़ित मनुष्य की वेदना में रांगेय राघव को एक नई जीवन दृष्टि प्राप्त हुई है। भूख, रोग और मृत्यु के बावजूद लेखक का विश्वास है कि बंगाल मर नहीं सकता - "जहाँ भूख और बीमारियों से लड़कर भी मनुष्य के बालकों में क्रांति को चिरंजीवी रखने का अपराजित साहस है, वह राष्ट्र कभी नहीं मर सकेगा।"

मानव की मानवीयता में लेखक की आस्था अटूट है। दुख और अत्याचार के भीतर लेखक ने मनुष्यता की अजस्र धारा को संचरित होते देखा है। भूख के विरुद्ध लड़ती जनता की शक्ति और साहस का अनुभव किया है। विपरीत परिस्थितियो में यदि कुछ सच है तो केवल बंगाली के बच्चों की अदम्य जिजीविषा जिसे देखकर लेखक मानो घोषणा करता है- "युग युग तक संसार को याद रखना पड़ेगा कि एक दिन मनुष्य के स्वार्थ, गुलामी और साम्राज्यवादी शासन के कारण बंगाल जैसी शस्य श्यामला भूमि में मनुष्य को भूख से दम तोड़ना पड़ा था। और लोगों ने उसे पूरी शक्ति से इसलिए झेला था कि मानवता जीवित रहना चाहती थी। उसे कोई मिटा नहीं सकता।"

कुल मिलाकर 'अदम्य जीवन' युग की उन समस्याओं की अभिव्यक्ति है जो प्रत्यक्षतः अकाल का परिणाम देखती है लेकिन वस्तुतः वह अंग्रेजों के साम्राज्यवादी शासन, पूँजीवाद और व्यक्ति के यथार्थ का परिणाम है। यहाँ जीवन का वह रूप है जिसमें जिंदगी को सही या गलत के सरलीकृत कटघरों में रखकर नहीं देखा जा सकता। भूख और मृत्यु की भीषण यंत्रणा के सम्मुख मानव मूल्यों व नैतिक धारणाओं की पहचान धुंधला जाती है। लेखक का आक्रोश स्वार्थी व्यवस्था के प्रति है। ☆

आलेख

# मार्क्सवादी जीवन-दृष्टि में आस्था:'सीधा-सादा रास्ता'

- शेख सैबाशिरीन
एम.आई.टी. कॉलेज, औरंगाबाद तहसील, जिला, औरंगाबाद- 431001(महाराष्ट्र)

'सीधा-सादा रास्ता' शीर्षक उपन्यास मार्क्सवादी जीवन-दृष्टि में लेखक की आस्था दर्शाता है। यह भगवतीशरण वर्मा के 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' से उत्प्रेरित होकर लिखी गई स्वतंत्र मौलिक रचना है। रांगेय राघव ने भूमिका में कहा है- 'मैंने भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' के आगे इसे लिखा है। मेरा उपन्यास अपने आप में स्वतंत्र है। इसका केवल एक संबंध अपने पूर्ववर्ती उपन्यास से है कि मेरे पात्र, उनकी परिस्थितियाँ, सामाजिक व्यवहार, घर, भूगोल, सम्पत्ति सब वही हैं जो 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में हैं। कहानी अब आगे चलती है। उन पात्रों का अतीत टेढ़े-मेढ़े रास्ते की कहानी है, वह सब गुजर चुका। जब उसकी आवश्यकता पड़ती है, तो वह चिंतन बनता है, पूर्व स्मृति बनती है। मैं नहीं कह सकता कि मैंने पहले उपन्यास का उत्तर लिखा है। किन्हीं विशेष पात्र परिस्थितियों का वर्मा जी ने अपने अनुकूल एक विशेष चित्रण किया है। मैं समझता हूँ, उसमें कुछ विकृतियाँ हैं। मेरी राय में इन पात्रों का असली चित्रण नहीं हुआ है। वह अब मैंने अपने अनुकूल किया है। वह विचारों का संघर्ष है। मैंने एक बात का विशेष ध्यान रखा है। जैसा जो वर्मा जी का पात्र है, उसको मैंने वैसे ही लिया है, पर वर्मा जी ने चित्र का एक पहलू दिखाया है, मैंने दूसरा भी। जैसे ऐतिहासिक पात्रों पर कोई भी अपने विचारों के अनुसार लिखता है, वैसे ही मैंने भी प्रयोग किया है।' (सीधा सादा रास्ता, रांगेय राघव, दो शब्द से उद्धृत)

स्वाधीनता संग्राम के परिवेश के चित्रण के साथ उन्होंने अपनी विचारधारा को भी समन्वित किया है। लेकिन विचारधारा कहीं पर हावी होती प्रतीत नहीं होती। प्रसंगानुकूल उन्होंने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है। अंग्रेजों के विरुद्ध जनचेतना के विकास को उपन्यासकार ने बखूबी दिखाया है। समाज की कुत्सित प्रवृत्तियाँ और स्वार्थवादी मनुष्यों के गर्हित कार्यों का भी चित्रण उपन्यास में किया गया है, लेकिन मानवीय चेतना के उत्कर्ष ने इन पक्षों के विघटित स्वरूप को और गहरा दिया है। उपन्यास अत्यधिक सजीव और उत्प्रेरक है। परंपरागत भारतीय समाज की मूलधारा पुरातन संस्कारों और रूढ़ियाँ से पोषित और संचालित है। भारत की सामाजिक परंपरा अत्यंत प्राचीन है, इसमें जाति-उपजाति, शाखा-प्रशाखा एवं अनेक भाग-विभाग हैं। रांगेय राघव ने परंपरागत सामाजिक मूल्यों के अंतर्गत वर्ण और संप्रदाय, प्रेम और सद्भाव, लोककल्याण, कर्मवाद, समाज में नारी का स्वरूप तथा अंधविश्वास और रूढ़ियों पर विशेष बल दिया है। उनके उपन्यासों में ये पक्ष अनेक स्थलों पर उभरकर आए हैं। इनके माध्यम से उपन्यासकार ने मूल्यों की सांस्कृतिक परंपरा पर विशेष दृष्टि रखी है।

जाति में बँटना एक सामाजिक प्रक्रिया है, जो वर्तमान समय में जन्मगत हो गई है। जातियों को मानव-समाज से समाप्त करना संभव नहीं है। इसकी जड़ें परंपरा में बहुत गहरे बैठी हुई हैं। जाति और जाति के बीच जो जड़ता, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, राग-द्वेष है, वही समाज को विखंडित करता है और अव्यवस्था फैलाता है,

जिसके कारण वर्गगत संघर्ष पैदा होता है। आवश्यक यह है कि जाति-जाति के बीच सद्‌भाव पैदा हो और मानवीय वृत्तियाँ जाग्रत हों। 'सीधा-सादा रास्ता' उपन्यास में रामनाथ तिवारी कहते हैं- 'जाति बंधन वास्तव में सामाजिक नहीं है, उसका आधार मन है। इस मन में एक जड़ता है, पाशविकता है, इसे नष्ट कर देना ही हमारा कर्तव्य है।' (सीधा साधा रास्ता, रांगेय राघव, पृ.सं.230)। सामंतवादी मानसिकता ने निम्न-वर्ग के साथ बहुत अत्याचार किया। नीच जातियों को अछूत समझकर समाज से तिरस्कृत किया गया। उनके साथ अमानवीय व्यवहार किए गए। इसी मानसिकता ने निम्नवर्ग के आत्मबल को खंडित किया और वे अपनी दयनीय दशा को भाग्य का अभिशाप समझते रहे।

मजदूर या श्रमिक किसी भी राष्ट्र का मेरुदण्ड है। उसी के माध्यम से देश उन्नति करता है। हमारे यहाँ का श्रमिक और निम्न-वर्ग अशिक्षित और रूढ़िग्रस्त है। वह अपनी दयनीय स्थिति को भाग्य से जोड़ता है। जब तक इस कमजोर वर्ग का बौद्धिक विकास नहीं होगा, तब तक देश समृद्ध नहीं हो सकता और न व्यवस्थित रूप से संगठित ही हो सकता है। अगर हमें अंग्रेजों से लोहा लेना है तो इस वर्ग को विकास की दिशा से जोड़ना होगा। 'सीधा-सादा रास्ता' उपन्यास में ब्रह्मदत्त कहता है- 'अंग्रेजों से लड़ने के लिए हमें अशिक्षित को शिक्षित करना है। जो अंधेरे में है, उन्हें उजाले में लाना है। कुसंस्कारों की विरासत पाने वाले को घृणा की दृष्टि से देखने के बजाय, उन्हें सुसंस्कृत करना है।' (वही, पृ.सं.287)

श्रमिकों का सर्वांगीण विकास आवश्यक है। उनके लिए भरण-पोषण, निवास और शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे उनके रहन-सहन का स्तर ऊँचा हो और वे राष्ट्र की विकसित चेतना के साथ जुड़ सकें। 'सीधा-सादा रास्ता' उपन्यास में ब्रह्मदत्त कहता है- 'हमें मजदूरों के बच्चों को पढ़ाना है, उन्हें साफ रहना भी सिखाना है। मतलब यह कि पहले साधन इकट्ठे करने हैं, फिर उनका प्रयोग बताना है।' (वही)। रांगेय राघव की पूँजीपतियों में, संवेदनात्मक भावना जगाने पर विशेष आस्था नहीं है। उनका विचार है कि अहिंसा के माध्यम से शोषण को नहीं रोका जा सकता, अपितु प्रतिक्रिया और विरोध द्वारा ही शोषण-वृत्ति पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है। 'सीधा-सादा रास्ता' उपन्यास में ब्रहमदत्त कहता है- 'मुझे उस दयालुता में श्रद्धा नहीं, जिसकी सामर्थ्य शोषक पर टिकी है। आप कहते हैं, मैं वर्ग-भेद से हिंसा चाहता हूँ। यह गलत है। वर्ग-भेद को कायम रखने की कोशिश ही हिंसा है, जो आदमी, आदमी में फर्क डालती है। अभाव के लिए रोना नहीं, माँग करना हमारी शक्ति है, उसके लिए जागरूक रहना हमारी सामर्थ्य है। आत्मा का बल वह है, जब मनुष्य, मनुष्य को बराबर समझे। पाश्विकता वह है कि जो किसी को मिलता है, उसे न दिया जाए।' (वही, पृ.सं.275)

आर्थिक मूल्य, स्वार्थ के कारण विघटित होते हैं। अर्थ सुख-प्राप्ति का साधन है, अतः व्यक्ति हर प्रकार से धन प्राप्त करना चाहता है। जहाँ स्वार्थ की भावना प्रबल हो जाती है, वहाँ व्यक्ति अनैतिक ढंग से धन अर्जित करने लगता है। अर्थ के विघटित स्वरूप का चित्रण करते हुए 'सीधा-सादा रास्ता' उपन्यास में लेखक कहता है- 'सब प्रकार के सुखों को प्राप्त करने का एकमात्र साधन है धन। धन जिसके होने से मनुष्य रक्त शोषक है, जिसके

सामने लाखों आदमी हड्डी के ढाँचे बने घूमते हैं, स्त्रियाँ नंगी होकर नाचती हैं, शराब के टूटे प्यालों का ढेर लगा रहता है, मनुष्य मनुष्य को कौड़ी के भी मोल नहीं खरीदता, धन जिसके न होने से मनुष्य निर्बल है, वह वैभव एक पिशाच है, जिसमें गुलाम बनने की अभिलाषा नहीं, यह सबको गुलाम बना लेना चाहता है, जैसे मनुष्य नहीं, यह एक भेड़ों की हेड है और कुछ नहीं। इस वैभव में लोग इतने पीस गए हैं कि न उन्हें बात करने का समय है, न एक-दूसरे से सहानुभूति जताने का। वे मशीन की तरह चलते हैं।' (वही, पृ.सं.68)

पूँजीपति स्वार्थ से प्रेरित होकर श्रमिकों का शोषण करते हैं। धनाधिक्य व्यक्ति को विलास और अनैतिकता की ओर प्रेरित करता है। पूँजीपति वर्ग पैसे को ऐय्याशी का माध्यम बनाता है व शराब और वेश्याखोरी में पैसे का अपव्यय करता है क्योंकि पैसा उसके श्रम से अर्जित नहीं हुआ। शोषण के द्वारा उसने सम्पत्ति अर्जित की है। एक वर्ग को भोजन तक उपलब्ध नहीं है और दूसरा वर्ग ऐय्याशी में पैसा अपव्यय कर रहा है। इस तथ्य को 'सीधा-सादा रास्ता' उपन्यास में इस प्रकार व्यक्त किया गया है- 'कभी वह (पूँजीपति) रेसकोर्स में शराब पीकर जुआ खेलता है, कभी वह बाजारों में वेश्याओं को नचाता है, कभी थियेटर पर धर्म के नाटक, सिनेमा में नैतिकता और समन्वयवाद का प्रचार करके उन अभिनेत्रियों से विलास करता है।' (वही, पृ.सं.124)

पूँजीपति वर्ग पैसे का उपयोग अपनी दुष्प्रवृत्तियों को छिपाने के लिए भी करता है। वह पैसे के द्वारा समाज में अपनी प्रतिष्ठा अर्जित करता है, कुछ कार्य इसके ऐसे भी होते हैं जो ऊपर से कल्याणकारी लगते हैं, लेकिन उनके पीछे पूँजीपति वर्ग अपने विलास की पूर्ति करता है। 'सीधा-सादा रास्ता' में उपन्यासकार कहता है- 'उसका जीवन एक भयानक कलुष है, जिसको वह बहुत से आदमियों के गेरुआ-वस्त्रों में छिपा लेना चाहता है। इसने अनाथालय खोलकर यह दिखाया है कि इसके बनाए समाज में बच्चे अनाथ होते रहेंगे। इसने भीख और दान दे-देकर जताया है कि इसकी शान को कायम रखने के लिए समाज में कंगाल और भिखमंगे आवश्यक हैं। इसने स्त्री के बंधन खड़े करके यह आवश्यक कर दिया है कि स्त्री सदैव लुटती रहे। इसने मनुष्य को, मनुष्य नहीं समझा। विधवाओं के आश्रम बनाकर इसने व्यभिचार के अड्डे बनाए हैं। इसने न्याय के लिए कचहरियाँ खोलकर दिनदहाड़े लूट, दगा, फरेब और रिश्वत का बाजार गर्म किया है। इसने अपनी रक्षा के लिए हिंसा करने वाली पुलिस और फौज बनाई है।' (वही, पृ.सं.124-125)

पैसे का आधिक्य और अभाव, दोनों ही अहितकर है। आधिक्य मनुष्य को अत्याचार और विलास की ओर उन्मुख करता है और अभाव व्यक्ति को अनैतिकता की ओर ले जाता है। धनी वर्ग विलास की ओर उन्मुख होता है और गरीब-वर्ग प्रायः चोरी, डाका आदि की ओर। 'सीदा-सादा रास्ता' में इस तथ्य को निरूपित करता हुआ रामनाथ कहता है- 'संपत्ति ही स्वार्थ की जड़ है। उसकी अति, उपस्थिति और अभाव, तीनों का क्रम न होने से इतनी उलझन है। मनुष्य अपनी समस्त मनुष्यता को भूल जाता है' (वही, पृ.सं.125)। धन की अपरिमित लालसा व्यक्ति को विपथगामी बनाती है। अनैतिक रूप से धन एकत्र करने के लिए उत्प्रेरित करती है। धन एकत्र करने की प्रतिस्पर्द्धा में मानव-मानव के बीच कटुता उत्पन्न होती है। बेईमानी से अर्जित धन ही समाज में वैमनस्य

पैदा करता है।

रांगेय राघव की आर्थिक मूल्य दृष्टि युगानुरूप और समानतावादी है। वे अर्थ का राष्ट्रीयकरण चाहते हैं, जिससे सभी को विकास का अवसर मिले। नारी वर्ग को भी वे पुरुष के समान स्वावलंबी बनाना चाहते हैं। उन्होंने आर्थिक शोषण का विरोध किया। आर्थिक क्षेत्र में अंग्रेजों और जमींदारों की मनोवृत्ति अब धीरे-धीरे सभी की समझ में आने लगी थी। और इसके प्रति प्रतिक्रिया का भाव निर्मित होने लगा था, जो प्रगतिशीलता का सूचक है। इस स्थिति का विश्लेषण 'सीधा-सादा रास्ता' उपन्यास में इस प्रकार हुआ है- 'यहाँ पहला शोषक है अंग्रेज सर्वेसर्वा। फिर उसके साम्राज्य के स्तंभ, जमींदार, पूँजीपति, पुलिस, फौज। यह लोग मिलकर दोनों हाथों से जन-समाज का गला घोंट रहे हैं। इनके बाजार जब रात को जगमगाते हैं, तब बस्तियों में अंधेरा स्याही की तरह गीला हो जाता है। जब इनकी स्त्रियाँ होठों पर ललाई लगाकर अपने रस को वासना से रंगती हैं, तब गरीबों के घरों में बच्चों को अपनी माँ की छाती में दूध तक नहीं मिलता। लगता है जैसे मनुष्यों की भीड़ को मुट्ठी भर, सिर्फ मुट्ठी भर राक्षस, कोड़े मार-मारकर, चिल्ला-चिल्ला कर चला रहे हैं और जैसे-जैसे उन मनुष्यों के रक्त की बूँदें धरती पर गिरती हैं, पृथ्वी काँपती है, इतिहास थर्रा उठता है, क्योंकि जो नया मनुष्य जन्म ले रहा है, वह इस भयानक व्यवस्था का भीषण शत्रु है, क्योंकि वह मनुष्य है, जो मनुष्य को मनुष्य समझने में ही अपनी मनुष्यता का चरमोत्कर्ष समझता है। वह पाप को कभी नहीं सह सकेगा। वह इन विराट मशीनों को अपना दास बना लेगा, जिनमें जकड़ा हुआ आज उसका शरीर कड़कड़ा कर टूट रहा है।' (वही, पृ.सं.125)

श्रमिकों पर ही देश की प्रगति निर्भर है, लेकिन वह श्रमिक ही शोषण का शिकार है। पूँजीपति सुरसा की तरह उसे निगल रहा है, लेकिन अब श्रमिकों में भी जागृति आ रही है और उनमें हनुमान की शक्ति अवतरित हो रही है। 'सीधा-सादा रास्ता' उपन्यास में इस परिवर्तित मनःस्थिति का विश्लेषण करते हुए लेखक कहता है- 'मशीनों के नीचे काम करने वाले प्रतिपल अपनी शक्ति की प्रचण्ड हुंकार सुन रहे हैं। गिलबिला कीड़ा इंसान बनना चाहता है। उसकी भुजाओं से चलने वाली मशीनें जब सामान उगलती हैं, तब सुरसा उसे निगल जाना चाहती है और मजदूर हनुमान-सा उसके बीच में अड़ना चाहता है। अभी वह उतना बड़ा नहीं कि उसका मुँह फाड़ दे, पर वह मुड़ता नहीं, टूटता नहीं, सुरसा उसे चबा जाने में असमर्थ है, वह एक-एक खून का, इन धनिकों द्वारा किए गए ठंडे खून का, माँ-बहिनों की अस्मत का, अपने निरक्षर अंधकार में पड़े बच्चों के सूने भविष्य का एक दिन जो भयानक बदला लेने वाला है, इसलिए यह धनिक उसे और भीषण वेग से कुचल देना चाहते हैं लेकिन असमर्थ हैं, क्योंकि इनके बिना दुनिया चल सकती है, उसके बिना एक दिन भी नहीं चल सकती।' (वही, पृ.सं.124 )

रांगेय राघव साम्यवादी थे, अतः उनकी आस्था मार्क्स और लेनिन के सिद्धांतों पर है और इन्हीं सिद्धांतों के आधार पर वे समाज को आर्थिक समानता की ओर सम्प्रेरित करना चाहते हैं। 'सीधा-सादा रास्ता' उपन्यास में पात्र ब्रह्मदत्त कहता है- 'शोषक के हथियारों से न डरो। यही मार्क्स ने कहा था, लेनिन ने कहा था, यदि हो सके तो वैसे ही, अन्यथा शस्त्रों से शोषक को हटा दो' (वही, पृ.सं.176 )। साम्यवाद के संबंध में रांगेय राघव की दृष्टि

व्यापक है। वे द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की प्रक्रिया से परिचित हैं। उन्हें यह ज्ञात है कि समाज में भौतिकवादी चक्र क्रमशः चलता रहता है। शोषकों के प्रति शोषित विद्रोह करता है, अधिकार प्राप्त करता है और धीरे-धीरे उसकी अधिकार-वृत्ति बढ़ती जाती है। आगे चलकर वह शोषक बन जाता है, फिर उसके मातहत शोषित होते हैं, फिर वे विद्रोह करते हैं, अधिकार पाते हैं और इसी तरह शोषक और शोषित का चक्र चलता रहता है। इसी उपन्यास में ब्रह्मदत्त कहता है- 'यदि सत्य का बल ही समर्थ है तो सत्य शोषितों की ओर है। आप जैसे शोषित कल शोषक बनेंगे। यह मुझे विश्वास है, पर जिस समाज में मजदूर और किसान शोषक हैं, वह शोषण मनुष्य पर नहीं प्रकृति पर विजय है, क्योंकि जब व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है तो शोषण नहीं है' (वही, पृ.सं. 276-277)। रांगेय राघव आर्थिक समानता के पक्षधर हैं। वैयक्तिक सम्पत्ति के वे विरोधी हैं क्योंकि व्यक्ति की प्रवृत्ति संग्रह की होती है और रांगेय राघव संग्रह के विरुद्ध हैं इसीलिए वे सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण चाहते हैं, सभी कार्य करें और उन्हें कार्य के प्रतिफल में उपयोग की चीजें प्रदान की जाएँ, शिक्षा आदि की व्यवस्था की जाए। आगे ब्रह्मदत्त कहता है- 'व्यक्तिगत असम्पत्ति का मतलब नंगा रहना नहीं है, न भूखा रहना, हर किसी को भोजन, नौकरी, शिक्षा की सुविधा हो, पर किसी का मिल, कारखाने, जमीन और खानों पर व्यक्तिगत अधिकार न हो' (वही, पृ.सं.277)।

जब समाज में व्यक्ति एक-दूसरे के हित को ध्यान में रखकर आचरण करते हैं तो सामाजिक मूल्य निर्मित होते हैं। रांगेय राघव के उपन्यासों में सामाजिक एवं आर्थिक मूल्यों का विस्तृत चित्रण किया गया है। वस्तुतः पारम्परिक विघटित एवं नवीन मूल्यों का विस्तृत चित्रण हुआ है। पारंपरिक मूल्यों में परोपकार, दानशीलता, त्यागभावना, श्रम के महत्व, कर्मवाद की प्रधानता, अंधविश्वास एवं रूढ़ियों का चित्रण है। स्वार्थ के वशीभूत होकर आचरण करने पर समाज में अव्यवस्था फैलती है और सामाजिक मूल्यों का विघटन प्रारंभ होता है। रांगेय राघव ने जातिगत संकीर्णताओं, उच्च-वर्ग का निम्न-वर्ग के प्रति वैमनस्य भाव एवं उपेक्षा, नारी के दैहिक शोषण आदि का चित्रण अपने उपन्यासों में किया है। समय के साथ जो नवीन मूल्य निर्मित हुए हैं, उनका भी वर्णन उनके उपन्यासों में हुआ है। शैक्षणिक एवं सामाजिक विकास के फलस्वरूप नए मूल्य निर्मित होते हैं। पारंपरिक मूल्यों में जो रूढ़ियाँ एवं अंधविश्वास व्यक्ति के लिए अनुपयोगी होते हैं एवं जो मूल्य व्यक्ति के विकास में बाधा पहुँचाते हैं, उन्हें त्यागकर मनुष्य नए मूल्यों का निर्माण करता है, जो समाज को नई दिशा प्रदान करते हैं। रांगेय राघव के उपन्यासों में जातिगत संकीर्णताओं का विरोध, उच्च वर्ग द्वारा किए जाने वाले शोषण की भर्त्सना, विधवा-विवाह का अनुमोदन, नारी स्वातंत्र्य की पक्षधरता आदि का उल्लेख है। इस प्रकार रांगेय राघव के उपन्यास सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से प्रासंगिक और महत्वपूर्ण हैं। ☆

> अपने आप पर, अपने कार्यों पर तथा अपने विचारों पर व्यक्ति अपना संप्रभु है। व्यक्ति को उस कार्य को करने का स्वतंत्रता है जिसको वह करना चाहता है, किंतु वह नदी में डूबने की स्वतंत्रता नहीं रख सकता।
>
> - जॉन स्टूअर्ट मिल

వ్యాసం

# రక్షా బంధన్

- రాధాకృష్ణ మిరియాల

దక్షిణ భారత హిందీ ప్రచార సభ ఆంధ్ర ప్రదేశ్ & తెలంగాణా, ఖైరతాబాద్, హైదరాబాద్ - 500004.

"అనుబంధాల హరివిల్లు
ప్రేమాభిమానాల పొదరిల్లు
గిల్లికజ్జాల సరదాలు
తోడు నీడగా సాగిన జీవితాలు
కాలం మారినా.. దూరం పెరిగినా..
చెరగని బంధాలు.. అవే అన్నా చెల్లెళ్ల అనుబంధాలు..
కలకాలం నిలవాలి ఈ రక్షాబంధాలు."

"రక్షాబంధన్.... సోదర, సోదరీమణులు అత్యంత పవిత్రంగా వారి బాంధవ్యం కలకాలం నిలవాలని జరుపుకునే పండుగ. అన్నకు చెల్లి అండగా, చెల్లికి అన్న తోడుగా జీవితాంతం ఉంటామని భరోసా ఇచ్చే పండుగ. రక్షాబంధన్ పండుగను రాఖీ పండుగ అని, రాఖీ పౌర్ణమి అని కూడా అంటారు. ఈ పండుగను కొన్ని ప్రాంతాలలో శ్రావణ పౌర్ణమి లేదా జంధ్యాల పూర్ణిమ అని కూడా అంటారు. ఒడిశాలో రాఖీ పండుగను 'గ్రహ్మ పూర్ణిమ' అని పిలుస్తారు. మహారాష్ట్ర, గుజరాత్, గోవాలలో ఈ రోజును 'నారియల్ పూర్ణిమ' అంటారు. ఉత్తరాఖండ్‌లోని ప్రజలు 'జనోపున్యు' పేరుతో రాఖీ పండుగను చేసుకుంటారు. తమ పవిత్రమైన జంధ్యాన్ని మారుస్తారు. మధ్యప్రదేశ్, ఛత్తీస్‌గఢ్, జార్ఖండ్, బీహార్‌లలో 'కజరి పూర్ణిమ' అని గుజరాత్‌లో కొన్ని ప్రాంతాల్లో 'పవిత్రోపన' పేరుతో పండుగను నిర్వహిస్తారు. ఉపనయనం చేసుకున్న వారు శ్రావణ పూర్ణిమ రోజున, పాత యజ్ఞోపవీతాన్ని విసర్జించి, కొత్తది ధరిస్తారు.

'రక్ష' అంటే రక్షించడం. 'బంధన్' సూత్రం కట్టడం అని అర్థం. అన్న లేదా తమ్ముడు విజయం దిశగా అడుగేయాలని, అత్యున్నత శిఖరాలకు చేరుకోవాలని కోరుకుంటూ ఓ సోదరి కట్టే కంకణమే రాఖీ. రాఖీ... అంటే..... రాకా చంద్రుడు (రాకా = నిండుదనం). పున్నమి నాడు ధరించే రక్షకు రాఖీ అని పేరు వచ్చింది. రాఖీ సూత్రం మూడు పోగుల దారం. ఈ రక్షాబంధనంలో దాగిన మూడు ముడులు ఆరోగ్యం, ఆయుష్షు, సంపదలకు సంకేతం. వాటి ఆకాంక్షలే ఈ వేడుక. శ్రావణ పౌర్ణమి నాడు జరుపుకునే రాఖీ సోదర ప్రేమకు సంకేతం. అక్క లేదా చెల్లెలు సోదరుని చేతికి రాఖీ కట్టి, పది కాలాలపాటు చల్లగా ఉండాలని మనసారా కోరుకుంటుంది. తమ సుఖాన్నీ, సంతోషాన్నీ కోరుకునే సోదరిపై సహజంగానే అన్నదమ్ములకి ఆత్మీయత బలపడుతుంది. ఆమెను జీవితాంతం రక్షించడానికి, కంటికి రెప్పలా కాపాడటానికి సిద్ధంగా ఉంటారు. అనుబంధం, ఆసరా - ఇవేగా జీవితంలో కావలసింది. అన్నా చెల్లెళ్ళు, అక్కా తమ్ముళ్ళ మధ్య ప్రేమానురాగాలకు ప్రతీకఈ రాఖీ పండుగ.

రాఖీ రోజు ఉదయాన్నే తలార స్నానం చేసి, కొత్త బట్టలు వేసుకుని రాఖీకి సిద్ధపడతారు. అక్కచెల్లెళ్ళు అందరూ బుద్ధిగా కూర్చున్న అన్నదమ్ములకి రాఖీని కడతారు. రాఖీని కట్టేటపుడు 'యేన బద్ధో బలీరాజా

దానవేంద్రో మహాబలః తేన త్వామభి బధ్నామి రక్షమాచల మాచల' అనే స్తోత్రాన్ని కూడా చదువుతారు. ఎలాగైతే ఆ విష్ణుమూర్తి, బలిచక్రవర్తిని బంధించాడో, నువ్వు అలాగే ఇతణ్ని అన్ని కాలాలలోనూ విడవకుండా ఉండు అని దీని అర్థం. ఆ తరువాత హారతిని ఇచ్చి, నుదుట తిలకాన్ని దిద్దుతారు. దానికి సంతోషపడిపోయే సోదరులు తమ ప్రేమకు గుర్తుగా వారికి చక్కటి బహుమతులను అందిస్తారు. ఇంతటి విశిష్టమైన రాఖీ పండుగను ఎందుకు జరుపుకుంటారు అంటే రాఖీ పండుగను జరుపుకునే ఈ సంప్రదాయం కొన్న వేల ఏళ్ల కిందటే ఉన్నట్లు హిందూ పురాణాల్లో పేర్కొన్నారు. ముఖ్యంగా వేదకాలంలో దీనికి విశేష ప్రాచుర్యం లభించింది. వేదకాలంలో ఈ పండుగను కేవలం సోదరి, సోదరుల బంధంగానే కాదు, భార్యాభర్తలకు సంబంధించింది కూడా అని పేర్కొన్నారు. దీనికి సంబంధించి పురాణాలలో అనేక కథలు ప్రాచుర్యంలో ఉన్నాయి.

పూర్వం దేవతలకు రాక్షసులకు మధ్య సుదీర్ఘంగా పుష్కర కాలం పాటు యుద్ధం సాగింది. యుద్ధంలో ఓడిపోయిన దేవతల రాజు దేవేంద్రుడు, తన పరివారం అంతటినీ కూడగట్టుకుని అమరావతిలో తలదాచుకున్నాడని భర్త నిస్సహాయతను చూసిన ఇంద్రాణి తరుణోపాయం ఆలోచించి రాక్షసరాజు అమరావతిని దిగ్బంధనం చేస్తున్నాడని తెలుసుకుని భర్త దేవేంద్రుడికి యుద్ధం చేయాలనే ఉత్సాహాన్ని కల్పించి ముందుకు పంపుతుంది. అయితే సరిగ్గా ఆ రోజే శ్రావణ పౌర్ణమి కావడంతో పార్వతీ పరమేశ్వరులను, లక్ష్మీనారాయణులను అత్యంత భక్తితో పూజించి రక్షను దేవేంద్రుడు చేతికి కడుతుంది. ఇక దేవతలందరూ కూడా ఆ రక్షలను ఇంద్రుడి చేతికి కట్టి యుద్ధానికి పంపిస్తారు. అలా వెళ్ళిన ఇంద్రుడు యుద్ధంలో గెలిచి తిరిగి త్రిలోకాధిపత్యాన్ని సంపాదిస్తాడు. అందువల్ల శ్రావణ పౌర్ణమి రక్షా పూర్ణిమ గా ప్రసిద్ధి గాంచిందని ధర్మరాజుకు శ్రీ కృష్ణుడు చెప్పినట్టుగా భవిష్యోత్తర పురాణంలో కనిపిస్తుంది. ఆ విధంగా ప్రారంభమైంది రక్షాబంధనం. అప్పటినుండి ఇప్పటివరకు రాఖీ పండుగ ప్రతి ఒక్కరు జరుపుకునే పండుగగా మారింది. అయితే ప్రస్తుతం ఇది భార్యభర్తల నుంచి వైదొలగి కేవలం సోదరి-సోదరుల బంధానికి ప్రతీకగా జరుపుకునే ఉత్సవంగా మారిపోయింది. అలాగే యమధర్మరాజు సోదరి యమున ప్రతి శ్రావణ పౌర్ణమికు యముడికి రాఖీ కట్టేది. తన సోదరితో ఎవరైతే రాఖీ కట్టించుకుంటారో వారికి అమరత్వం సిద్ధిస్తుందని యముడు ప్రకటించాడు. అప్పటి నుంచి మహిళలు తమ సోదరులకు రాఖీ కట్టి చిరాయువుగా జీవించాలని కోరుకుంటారు. అలాగే సోదరులు కూడా తమ సోదరికి అశీస్సులు అందించి ప్రేమను చాటుకుంటారు. వాస్తవానికి పసుపులో దారాన్ని ముంచి, దాన్ని మూడు పొరలుగా చేతికి కట్టిన రాఖీ రక్షణగా ఉంటుంది. ఇక నాటి నుండే ఈ పండుగ ఆచారంగా కొనసాగుతుందని పురాణాలు చెబుతున్నాయి. ఈ కథ మాత్రమే కాదు రక్షాబంధనం గురించి ఇంకా బోలెడన్ని పురాణ కథలు ప్రచారంలో ఉన్నాయి.

రాఖీ పౌర్ణమి బలేవా

రాఖీ పౌర్ణమిని బలేవా అని కూడా పిలుస్తారు. బలేవా అంటే బలిరాజు భక్తి. దీని వెనుక ఉన్న కథ చూద్దాం. బలి చక్రవర్తి విష్ణు భక్తుడు. తన అపరిమిత భక్తితో విష్ణుమూర్తిని తన వద్దే ఉంచేసుకున్నాడు. శ్రీ మహావిష్ణువు బలిచక్రవర్తి కోరిక మేరకు అతనితోపాటు పాతాళలోకానికి వెళ్ళి ఉండిపోగా వైకుంఠం వెలవెల

పోయింది. లక్ష్మీదేవి బాగా ఆలోచించి విష్ణుమూర్తిని తీసుకువెళ్లడానికి వచ్చి బలిచక్రవర్తికి రక్షాబంధనాన్ని కట్టి తనకు రక్షణ కల్పించమని బలిచక్రవర్తిని కోరుతుంది. బలి, భ్రాతృ ప్రేమతో ఏం కావాలమ్మా అని అభిమానంగా అడిగాడు. లక్ష్మి వెంటనే విష్ణుమూర్తి కావాలని కోరింది. బలి చక్రవర్తి సోదరుడిగా తనకు రక్షాబంధనాన్ని కట్టిన సోదరికి బహుమానంగా సర్వం త్యాగం చేసి లక్ష్మీదేవితో విష్ణుమూర్తిని పంపుతాడు. దీంతో లక్ష్మీదేవి తన భర్తను వైకుంఠానికి తీసుకొని పోతుంది. అంతటి శక్తివంతమైన బంధనం కాబట్టి రక్షాబంధనానికి ఇంతటి చరిత్ర ఉంది.

## ద్రౌపదీ శ్రీకృష్ణుల సోదర ప్రేమ

మహాభారతం ప్రకారం శిశుపాలుని శిక్షించే క్రమంలో సుదర్శన చక్రాన్ని ప్రయోగించిన కృష్ణుడు చూపుడువేలుకు గాయం కావడంతో అది గమనించిన ద్రౌపదీ తన పట్టు చీర కొంగు చూపి కృష్ణుడి చేతికి కట్టు కట్టిందట. అప్పుడు శ్రీకృష్ణుడు ఎల్లవేళలా అండగా ఉంటానని ద్రౌపదికి హామీ ఇచ్చాడు. దుశ్శాసనుడు దురాగతం అయిన, వస్త్రాపహరణం సమయంలో ద్రౌపదికి మహా రాజ్యాధిపతి అయిన తండ్రి ద్రుపద రాజు కానీ, ఉద్దండులయిన ఐదుగురు భర్తలు కానీ గుర్తు రాలేదు. తనను ఆదుకునేవాడు కృష్ణుడే అనుకుంది. ఆర్తిగా, నిస్సహాయంగా శ్రీకృష్ణుని ప్రార్థించింది. కృష్ణుడు ఆ క్షణంలో ద్రౌపదికి తరగని వస్త్రాన్ని ప్రసాదించి, అవమానం నుండి ఆమెను శ్రీకృష్ణుడు కాపాడారని పురాణాలు చెబుతున్నాయి. ఇది రాఖీ బంధనాన్ని సూచిస్తుంది. అదే విధంగా రాణి కర్ణావతి, హుమయూన్ చక్రవర్తుల కథ కూడా రాఖీ పండుగ ప్రాశస్త్యాన్ని తెలియజేస్తుంది. రాఖీలో దారం బంధానికి చిహ్నం. అలాగే మంచి చెడులు, వైఫల్యాల నుంచి సోదరుని ఇది కాపాడుతుంది. ఎరుపు రంగు దారం అగ్నికి ప్రతీక... అంటే ఇది శక్తికి, రక్షణకు, భద్రతకు బలం.

మొదట్లో రాఖీని హిందువులు, సిక్కులు మాత్రమే జరుపుకునేవారు. అలాగే అమ్మాయిలు తమ సొంత అన్నదమ్ములకు మాత్రమే రాఖీ కట్టేవారు. కానీ ఈ సంప్రదాయం ఇప్పుడు దేశంలో అన్ని మతాలకూ పాకింది. అలాగే, సొంతవారికే కాకుండా, తమ ఇష్టాన్ని బట్టి అన్నదమ్ముల వరసయ్యే వారికీ కడుతున్నారు. చుట్టరికంలోనే గాక, బంధుమిత్రుల పిల్లలు, పక్కింటివారు, స్నేహితులు ఇలా ఎవరికైనా రాఖీ కడుతున్నారు. కాలేజీల్లో తమ వెంటబడి పోకిరీ వేషాలు వేసే అబ్బాయిల్ని రాఖీతో వదిలించుకునే అమ్మాయిలకీ లోటు లేదు. సోదరులు దూరప్రాంతాల్లో ఉంటే, రాఖీలను పోస్టులో పంపిస్తున్నారు. మనసుంటే మార్గం ఉంటుంది మరి. రక్షాబంధనం అంటే ఒకరిపై ఒకరికి ఉండే ప్రేమానురాగాలకే కాదు మానవ సంబంధాలకు, అనుబంధాలకు సంబంధించిన పండుగ. అందుకే ఈ రాఖీ పండుగను ప్రియమైన వారితో ఘనంగా జరుపుకోండి.

వెలకట్టలేని బంధాలను వదులుకోలేని అనుబంధాలను గుర్తుచేసే మధుర బంధమే రక్షా బంధనం. ఒకే కడుపున పుట్టకపోయినా ఎంతో ప్రేమను, ఆదరాభిమానాలను చూపిన నా అన్నదమ్ములకు, అక్కచెల్లెళ్ళకు రక్షాబంధన్ సందర్భంగా శుభాకాంక్షలు! ☆

गतिविधियाँ

# प्रशिक्षण महाविद्यालय, हैदराबाद का वार्षिकोत्सव संपन्न

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, खैरताबाद, हैदराबाद के श्री एम.वी. पापन्ना गुप्त सभागृह में शैक्षणिक सत्र 2021-2023 का बी. एड. वार्षिकोत्सव 19 जुलाई, 2023 को संपन्न हुआ। अतिथियों के द्वारा महात्मा गांधी की प्रतिमा का माल्यार्पण एवं दीप प्रज्वलन के साथ कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ। प्रशिक्षणर्थियों द्वारा गणेश वंदना के उपरांत बी.एड. के प्रवक्ता डॉ. षेक जुबेर अहमद ने अतिथियों का परिचय दिया। मुख्य अतिथि दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा-आंध्र प्रदेश तथा तेलंगाणा के अध्यक्ष पी. ओबय्या ने प्रवक्तागण एवं कर्मचारियों का सम्मान किया। कार्यक्रम के संयोजक, बी.एड. के प्राचार्य डॉ.सी. एन. मुगुटकर ने बी.एड. महाविद्यालय का वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। बी.एड. के प्रशिक्षणार्थी अस्किका महंति, नेपाल बिस्वाल, रूबी सिंह, पूजा कुमारी एवं निशांत कुमार बेहेरा ने प्रशिक्षण के दौरान अपने अनुभवों को प्रस्तुत किया। बी.एड. के प्रवक्ता जी. एकाम्बरेश्वरुडु ने दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के विभिन्न प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्राचार्यों का स्वागत किया।

मुख्य अतिथि पी.ओबय्या ने अपने अनुभवों को साझा करते हुए प्रशिक्षणार्थियों को प्रेरणा प्रदान किए। दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के प्रथम उपाध्यक्ष श्री मुहम्मद अब्दुल रहमान ने बी.एड. के प्राचार्य की प्रशंसा की एवं छात्रों को आशीर्वाद दिया। पी.जी. एवं बी.एड. के ग्रन्थपाल डॉ. संतोष कांबले ने छात्रों को ग्रंथालय के महत्व के बारे में बताया। बी.एड. के प्राचार्य डॉ. सी. एन. मुगुटकर ने सभी छात्रों को भविष्य के लिए अग्रिम शुभकामनाएँ दी। दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा-आंध्र प्रदेश तथा तेलंगाना की संपर्क अधिकारी ए. जानकी ने अध्यक्षीय वक्तव्य में छात्रों के उज्वल भविष्य की शुभकामनाएँ दी।

कार्यक्रम का संचालन डॉ. डी. डी. देसाई ने किया। सुकन्या चल्ला ने धन्यवाद ज्ञापित किया। समारोह में पी.जी. के प्राध्यापकगण, शिक्षा महाविद्यालय के प्रवक्तागण, सभा कार्यालय के प्रबंधक एवं सभी के विभागों कर्मचारीगण, छात्र एवं छात्राएँ उपस्थित रहे।

## श्रद्धांजलि

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा- आंध्र प्रदेश तथा तेलंगाना के व्यवस्थापक समिति के सदस्य (आंध्र सभा की कोषाध्यक्ष जमीला बेगम और प्रबंध निधिपालक शेख मोहम्मद खासिम के सुपुत्र) एस. एम. रफीख का निधन 18 जुलाई, 2023 को हुआ। उनका आकस्मिक निधन उनके परिवार के लिए अपूरणीय क्षति है। हम भगवान से प्रार्थना करते हैं कि उनकी आत्मा को चिरशांति और शोक संतप्त परिवार को धैर्य प्रदान करें।

**POST GRADUATE AND RESEARCH INSTITUTE**

**DAKSHINA BHARAT HINDI PRACHAR SABHA, MADRAS**

Declared by Parliament as an Institution of National Importance by Act 14 of 1964

**Accredited with 'B+' Grade by NAAC**

All B.Ed./M.Ed. Colleges are Recognised by NCTE, SRC, NEW DELHI

**ADMISSION NOTIFICATION 2023 – 2024**

1. **B.Ed. (Hindi Medium) : Two Years :**

   **ELIGIBILITY** : (10+2+3 Pattern) Candidates with atleast 50% marks either in the Bachelor's Degree or any other qualification equivalent thereto, are eligible to seek admission as per the NCTE Norms.

2. **M.Ed. (Hindi Medium) : Two years** : Only at **Dharwad, Karnataka**

   **ELIGIBILITY** : (10+2+3+2 Pattern) Candidates with 50% marks in Courses like B.A./B.Ed., B.Sc./B.Ed., M.A./B.Ed., M.Sc./B.Ed., B.Ed. (Integrated) Courses. B.El.Edn. with Hindi as one of the subjects are eligible to seek admission as per the NCTE Norms. Relaxation for SC/ST/OBC/PWD and other categories in the percentage of eligibility condition for both B.Ed. and M.Ed. courses shall be as per the State Government rules.

   Admission is open in all the **11 B.Ed. Colleges** run by DBHP Sabha in the States : Tamil Nadu, Andhra Pradesh, Karnataka & Kerala. **Colleges at : CHENNAI, HYDERABAD, VIJAYAWADA, VISAKHAPATNAM, BANGALORE, BELGAUM, VIJAYPUR, DHARWAD, MYSORE, ERNAKULAM, NILESHWARAM.**

**For Application and Prospectus : Rs. 600/-**

**Last date for submission of filled up Application : 30-08-2023**

**Applicants may contact directly to the concerned college.**

**Principal B.Ed., Chennai : 044-24341824- Extn, 123**

**Secretary, Andhra Branch : 040-23316865/23314949**

**Secretary, Karnataka Branch : 0836 – 2747763/2435495**

**Secretary, Kerala Branch : 0484 – 2377766/2375115**

Duly filled–in application form shall be submitted to the concerned college Principals in the respective States. *Admission Application forms are available on Sabha's website :* ***www.dbhpscentral.org***

**REGISTRAR**


## दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास

### प्रवेशिका के लिए नया पाठ्यक्रम

प्रचारक बंधुओं को सादर प्रणाम। आपको यह सूचित करते हुए हर्ष का अनुभव कर रहे हैं कि सभा की प्रवेशिका पाठ्यक्रम के लिए संशोधित एवं परिवर्द्धित पुस्तकें मुद्रित होकर तैयार हो चुकी हैं। पुस्तकों का विवरण इस प्रकार है :- **प्रवेशिका पाठ्य पुस्तक 1, 2, 3 (व्याख्यानमाला सहित)**

इन पुस्तकों को प्रचारकों एवं विद्यार्थियों की सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए तैयार किया गया है। प्रचारकों से विनम्र निवेदन है कि विद्यार्थियों को पाठ्य पुस्तक पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करें। यह भी सूचित करना चाहते हैं कि **पुराना पाठ्यक्रम सितंबर 2023 की परीक्षा तक** व्यवहार में रहेगा। इन **नई पाठ्य पुस्तकों के अंत में परीक्षा आवेदन पत्र भी होगा। 2024 फरवरी से प्रवेशिका परीक्षा** के लिए **इसी आवेदन पत्र का प्रयोग करना अनिवार्य** है। पुस्तकें सभी शाखा कार्यालय एवं सेवा केंद्रों में उपलब्ध हैं। (प्रधान सचिव)

## दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद

## बी.एड. महाविद्यालय वार्षिकोत्सव : 19 जुलाई, 2023

## बधाई !

शिक्षा विभाग, तेलंगाना राज्य सरकार की निदेशक एवं कमीशनर श्रीमती ए. देवसेना, आई.ए.एस से मिलकर दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा - आंध्र प्रदेश तथा तेलंगाना के प्रबंध निधिपालक शेख़ मोहम्मद खासिम ने सभा द्वारा संचालित विभिन्न परीक्षाओं के बारे में जानकारी दी। तेलंगाना राज्य भर में हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार करने के लिए सरकार की ओर से प्रोत्साहन हेतु प्रार्थना पत्र भी दिए। ए.देवसेना ने हिंदी की प्रोन्नति के लिए सभा की सेवाएँ तथा सभा की गतिविधियों के बारे में सुनकर प्रसन्नता व्यक्त की और सभा की सराहना की। उन्होंने यह आश्वासन दिया कि तेलंगाना राज्य भर में हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए विभिन्न विद्यालयों के विद्यार्थियों को सभा की परीक्षाओं में भाग लेने हेतु प्रोत्साहित करेंगे।

**ISSN 2582-0885**
**SRAVANTHI**
RNI3108/58
August 2023

Registered News Paper

*To*

................................................................................................

................................................................................................

................................................................................................

*If not delivered, please return to:*

Dakshina Bharat Hindi Prachar Sabha – Andhra Pradesh & Telangana
**(Provincial Branch of Dakshin Bharat Hindi Prachar Sabha, Madras)**
(Declared by Parliament as an Institution of National Importance by Act 14 of 1964)
**P.B. No.23, Khairatabad, Hyderabad - 500 004.**

कमज़ोर किसी को माफ़ नहीं कर सकते, माफ़ करना मज़बूत लोगों की निशानी है।

- महात्मा गांधी

Edited, Printed and Published by G. Selvarajan on behalf of the D.B. Hindi Prachar Sabha - Andhra Pradesh & Telangana Khairatabad, Hyderabad - 500 004 and Printed at Hindi Prachar Press, T. Nagar, Chennai - 600 017.